thearyasamaj.org

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघनतो अरावणः॥

आर्य संकल्प

(बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष-37 दिसंबर अंक-10

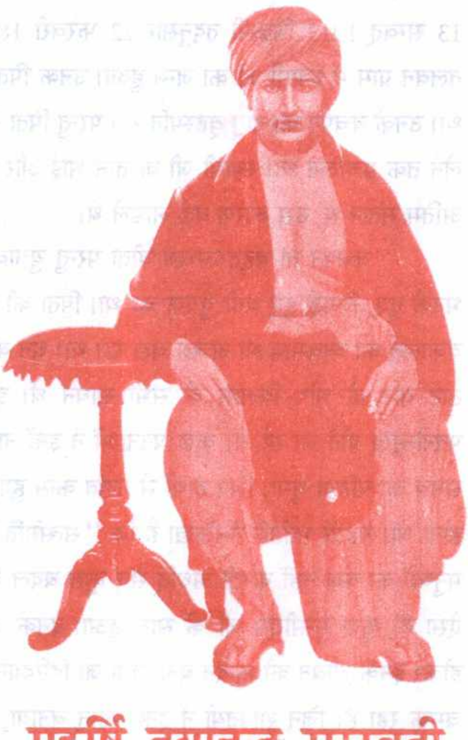

महर्षि दयानन्द सरस्वती

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा

कार्यालय : श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 (बिहार)

thearyasamaj.org

आर्य संकल्प

सम्पादक
रमेन्द्र कुमार गुप्ता
मो. 9334184136

सह सम्पादक
संजय सत्यार्थी
मो. 9006166168
प्रेम कुमार आर्य
मो. 9570913817

सम्पादक मंडल
पं० व्यासनन्दन शास्त्री
श्री बिन्देश्वरी शर्मा
मो. 8544088138

संरक्षक
गंगा प्रसाद
सभा प्रधान

कोषाध्यक्ष
सत्यदेव गुप्ता
स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन
नयाटोला, पटना-800 004
दूरभाष : 07488199737
E-mail_arya.sankalp3@gmail.com
सदस्यता शुल्क
एक प्रति : 15/-
वार्षिक : 120/-

मुद्रक :
जय उमा प्रिन्टर्स
मो. 9430246879

संपादकीय

तीन गुरूओं ने बना दिया कल्याण मार्ग का पथिक

आर्य समाज के इतिहास में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मानव जीवन की जिन मर्यादाओं को वेदानुकूल उचित बताया है, उनको व्यावहारिक रूप देने का सबसे अधिक सौभाग्य यदि कि सी को प्राप्त हुआ है तो वह केवल महावलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द जी थे।

जन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारी सेनानी अंग्रेजों की गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई भारत माता के माथे पर स्वतंत्रता का ताज रखने की तैयारी कर रहे थे। उसी पावन एवं देशभक्ति से ओतप्रोत वातावरण में फाल्गुन वदी 13 सम्वत् 1913 विक्रमी तद्नुसार 22 फरवरी 1857 के दिन जालन्धर जिले के तलवन ग्राम में स्वामी जी का जन्म हुआ। उनके पिताजी का नाम लाला नानक चन्द था। उनके बचपन का नाम वृहस्पति था। परन्तु पिता ने मुंसीराम नाम रखा जो सन्यास लेने तक प्रचलित था। स्वामी जी के तीन भाई और दो बहनें थी। वे अपने पिता के अंतिम संतान थे, उस कारण बड़े लाडले थे।

बचपन तो बहुत अच्छा बीता परन्तु युवावस्था का प्रारम्भिक जीवन एक भटके हुए, बिगड़े हुए धनी युवक का था। पिता की सरकारी नौकरी थी और अपनी वकालत का व्यवसाय भी अच्छा चल रहा था। धन की कभी न होने के कारण घर में ठाट-वाट के भोग-विलास के सभी साघन थे। इस कारण कुसंगति में पड़कर पतनोन्मुख होते जा रहे थे। कुछ घटनाओं ने इन्हें नास्तिक भी बना दिया था। परन्तु समय का पहिया घूमा। जिन हाथों से गलत काम हुए, उन्हीं हाथों से अच्छे काम भी होना था। महर्षि भर्तहरि ने लिखा है कि "सत्संगति किन केशति पुंसाम्" सत्संगति मनुष्यों का क्या नहीं करती अर्थात् सब कुछ बदल देती है, कायाकल्प कर देती है। ऐसा ही कुछ मुन्सीराम जी के साथ हुआ। इनके जीवन में तीन आदर्श उपस्थित होकर इनके जीवन को कुन्दन बना दिया जो दिग्दिगन्त में आज तक धुवतारा के तरह चमक रहा है। जिन शक्तियों ने इन्हें महान् बनाया, उन्हें वे अपना गुरू, मानते थे, आइये एक-एक कर तीनों गुरूओं की चर्चा करें-

1. महर्षि का साक्षात्कार- सन् 1879 में जब वे बाईस वर्ष के थे, तो एक ऐसी घटना घटी जिसने मुंशीराम के इस दुर्व्यसनों से घिरे हुए जीवन की काथा पलट दी।

thearyasamaj.org

आर्य संकल्प

-: सूची :-

क्रम	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	सम्पादकीय	
2.	वेद मंत्र	1
3.	वेद प्रवचन	2
4.	अग्नि समृद्धि	4
5.	हिन्दी आत्मकथा	8
6.	ऋस्तस्य पंथा	14
7.	अंधविश्वास निर्मूलन	16
8.	नामकरण संस्कार का महत्व	26
9.	युवा चरित्र	32

इस पत्रिका में दिये गये लेख लेखकों के अपने विचार हैं, इससे सम्पादक का कोई सम्बन्ध नहीं है।

दिसम्बर

विद्वानों का सम्मान

यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया
दधिरे सिध्रयाप्स्वा।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो
बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः॥

(ऋग्वेद 5/44/6)

पदार्थ- जिन मनुष्यों द्वारा ईश्वर (**यादृक्**) जैसा (**ददृशे**) देखा जाता है (**तादृक्**) वैसा (**उच्यते**) कहा जाता है और जो मनुष्य (**ज्रयः**) वेगवाले [निरालस] (**सिध्रया**) कल्याणकारिणी (**छायया**) छाया [ज्ञान और आशीर्वाद] से (**अप्सुः**) जलों वा प्राणों में (**अस्मभ्यम्**) हम मनुष्यों के लिए (**उरुषाम्**) सबके कर्म-भोग का विभाग करनेवाले परमात्मा को, (**महीम्**) बड़ी [शुभ] वाणी वा पृथिवी को, (**बृहत**) बड़े-बड़े (**सुवीरम्**) उत्तम वीर को तथा (**अनपच्युतम्**) नाश-रहित (**सहः**) बल को (**सम, आ, दधिरे**) उत्तम प्रकार धारण करते हैं, वे मनुष्य हम द्वारा सदैव सत्कार के योग्य हैं॥

काव्यरूपान्तरण-

विद्या धन जो देते हमको,
शुभ वीरों बल को पाते।
सदा सत्य वाणी कहते वे,
आदर-योग्य कहे जाते॥

डॉ. वेद प्रकाश, मेरठ

thearyasamaj.org

वेद-प्रवचन

आचार्य ज्ञानेश्वरार्य, रोजड़

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥

अथर्ववेद 10/8/32

शब्दार्थ- अन्ति सन्तम् न जहाति - अत्यन्त निकट, अन्दर रहनेवाले (ईश्वर से) मनुष्य कभी भी अलग नहीं हो सकता, **अन्ति सन्तम् न पश्यति** - उस अन्दर रहने वाले ईश्वर को आँखों से देख भी नहीं सकता है, **देवस्य पश्य काव्यम्** - उस ईश्वर की कृति (वेद और संसार) को देखो, **न ममार न जीर्यति** - जो न कभी मरता है न कभी बूढ़ा होता है।

भावार्थ- जीवात्मा के सर्वाधिक निकट ईश्वर है। उससे अधिक निकट और कोई पदार्थ नहीं है, निकट ही नहीं, बल्कि वह तो आत्मा के अन्दर है अन्तर्यामी है, आत्मा का भी आत्मा है और वह अन्तर्यामी अनादि काल से आत्मा के साथ है और अनन्त काल तक साथ ही रहेगा। कभी भी उससे अलग नहीं था, न कभी अलग होगा। जीवात्मा चाहे तो भी उसके साम्राज्य से भाग नहीं सकता है, क्योंकि वह अन्दर रहता हुआ भी अनन्त है। देश की दृष्टि से भी और काल की दृष्टि से भी।

एक आश्चर्य यह है कि इतने सन्निकट रहनेवाले, अनादि काल से साथ में रहने वाले, अन्दर रहने वाले परमात्मा को यह एकदेशी सूक्ष्म आत्म-शक्ति जीव अपनी आँखों से देख भी नहीं सकता है। जीवात्मा की ये नेत्रन्द्रिय तो अपने गोलक को भी नहीं देख पाती है। इन नेत्रों की क्षमता केवल बाहर की रूपवान आकार वाली वस्तुओं को ही देखने की है इसलिए इन नेत्रों का विषय ईश्वर नहीं है। जो इन नेत्रादि इन्द्रियों से परमेश्वर के स्वरूप को देखना चाहता है वह तो नादान है, भोला है।

हाँ, नेत्रों से परमेश्वर के कृति कार्य को तो देखा जा सकता है। यह कार्य दो प्रकार का है। एक वाणी रूप - वेद काव्य तथा दूसरा क्रिया रूप यह दृश्य = संसार। वेद, काव्य का विषय है। वेद ज्ञान सुना जा सकता है और दृश्य कृति संसार है। जिसे आंखो से देखा जा सकता है। वेदवाणी तथा दृश्यमान संसार दोनों ईश्वर के कार्य हैं। इन दोनों कार्यों से कर्त्ता ईश्वर का अनुमान लगाया जा सकता है।

ईश्वर का कार्य- वेद ज्ञान ईश्वर के ज्ञान में सदा बना रहता है। सृष्टि को बनाकर ईश्वर इसे शब्द रूप में ऋषियों को प्रदान करता है। ये ऋषि इस शब्द रूप वेद को लिपि बद्ध करके नेत्र का विषय बना देते हैं। अरूप को रूप प्रदान कर देते हैं। यह ऋषियों का महान् विज्ञान या देन है। महान् आश्चर्य होता है कि रूप को देखकर

thearyasamaj.org

वाणी बोलने लग जाती है। वाणी को सुनकर उसे लिपिबद्ध किया जा सकता है।

मनुष्यों के पास विद्यमान शब्दरूप वेद या लिपिबद्ध किया पुस्तकरूप वेद तो कदाचित् नष्ट भी हो सकता है किन्तु ईश्वर के पास विद्यमान वेद सदा बना रहता है। प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य के पास आता है और प्रलय में उनके पास नहीं रहता है। फिर भी 4 अरब 32 करोड़ वर्ष तक तो सृष्टि में मनुष्यों के पास भी वैसे का वैसा ही बना रहता है।

ऐसे ही यह संसार 4 अरब 32 करोड़ वर्ष तक सतत बना रहता है। बीच में नष्ट नहीं होता। वेद और ब्रह्माण्ड इतने विस्तृत और विशाल हैं कि प्रत्येक दिन इनमें नई-नई वस्तुएं और ज्ञान-विज्ञान अनुभव में आते रहते हैं। चारों वेदों के 20 हजार से भी अधिक मन्त्रों में अनन्त ज्ञान-विज्ञान सूत्ररूप में भरा हुआ है। एक अल्प जीवात्मा का यह सामर्थ्य नहीं है कि वह इस अथाह अनन्त ज्ञानराशि का पूर्ण रूप से अवगाहन कर ले। सम्पूर्ण जीवन लगाकर भी मनुष्य कुछ ही ज्ञान के बिंद प्राप्त कर पाता है।

इसी प्रकार ईश्वर का दूसरा दृश्यरूप विशाल काव्य-ब्रह्माण्ड भी चित्र-विचित्र स्थितियों से परिपूर्ण है। ब्रह्माण्ड को छोड़ें, एक छोटी सी पृथ्वी पर भी न जाने इतनी आश्चर्यजनक अद्भुत रचनाएँ हैं कि एक मनुष्य सम्पूर्ण जीवन लगा कर भी इन सबका हों, वेद और सृष्टि को देख कर मनुष्य को यह तो बोध हो जाता है कि इतने बड़े व विशाल वेद तथा सृष्टि को बनाने वाला ईश्वर कितना महान् होगा। ईश्वर की अनुभूति = दर्शन तो अध्यात्म शास्त्रों में वर्णित योग-समाधि विद्या के माध्यम से योगी ही आत्मा द्वारा अपने हृदय में करते हैं। किन्तु संसार को देखकर तथा वेद को पढ़कर ईश्वर के विषय में आनुमानिक ज्ञान तो सामान्य बुद्धिमान् भी कर लेता है और उसको अपना सच्चा माता, पिता, गुरु, आचार्य, राजा, न्यायाधीश मान करके अपने जीवन को पवित्र करके महान् बना सकता है।

हे प्रभुदेव! दया करों, हमारा वरण करो हमें वह अध्यात्म विद्या प्रदान करो जिससे समाधि लगाकर आपकी अनुभूति अपने हृदय, आत्मा में करके, दुःख रूपी बन्धन से छूट जायें और अन्यों को भी छुड़ाने हेतु प्रेरणा प्रदान करें।

वेद परमेश्वरोक्त हैं इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद, अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है हम मानते हैं।

[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 7]

thearyasamaj.org

अग्नि समृद्धि से आत्मविश्वास

पिछले अंक का शेष....

लेखक- देवशर्मा वेदालंकार

प्रश्न : हम अग्नि को कैसे बढ़ायेंगे?

उत्तर : समिधा और घी से बढ़ायेंगे।

प्रश्न : समिधा किसे कहते हैं?

उत्तर : अग्नि जलाने के लिए जिस ईंधन की जरूरत होती है उसे समिधा कहते हैं।

प्रश्न : फिर तो उसे लकड़ी कह सकते हैं?

उत्तर : नहीं! इसको लकड़ी नहीं कह सकते हैं क्योंकि ये समिधा कुछ विशेष वृक्षों से ही ली जाती हैं। यहाँ अग्नि जलाने का उद्देश्य भी विशेष सुगन्ध प्रदान करना और दुर्गन्ध को भगाना है। यदि नीम की लकड़ी को जलायेंगे तो दुर्गन्ध पैदा हो जायेगी। कुछ विशेष वृक्षों से ही समिधा ले सकते हैं। जैसे- चन्दन, पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि। महर्षि दयानन्द ने भी इनका ही समर्थन किया है। इनके अन्दर विशेष गुण होते हैं जैसे- आक की समिधा से रोग दूर होते हैं। फ्लाश की समिधा सब कामनाओं की पूर्ति करती है। खदिर वृक्ष एवं बेल की समिधा धन लाभ के लिए और अपामार्ग की समिधा इष्ट को बढ़ाने वाली है। सन्तान-प्राप्ति के लिए पीपल की, विशेष सुख की प्राप्ति के लिए दूर्वा तथा कुश, वर्षा के लिए बेंत, करीर की समिधा आदि विशेष गुणों वाली समिधाएँ है। इसलिए इनको लकड़ी कहकर इनके विशेष गुणों का अपमान करने के समान है।

प्रश्न : समिधा वृक्षों से ही प्राप्त होगी इसलिए वृक्षों को काटना पड़ेगा।

उत्तर : बहुत से वृक्ष स्वयं सूख जाते हैं, बहुत से वृक्षों का कुछ भाग सूख-सूख कर स्वयं गिर जाता है, कुछ आँधी तूफान में भी गिर जाते हैं। कभी-कभी सड़क इत्यादि बनाने के लिए भी वृक्षों को काटने की आवश्यकता पड़ जाती है। फिर नियम की ओर ध्यान देना चाहिए।

प्रश्न : नियम क्या है?

उत्तर : नियम है **'काटेगा वही जो बोयेगा'** इसलिए हर व्यक्ति को एक वृक्ष अवश्य लगाना चाहिए।

प्रश्न : घी से अग्नि को बढ़ाने का क्या अभिप्राय है?

उत्तर : यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए घी की आहुति देना अति आवश्यक है। मन्त्र में भी कहा गया है- **घृतैर्बोधयता- तिथिम्-** घृत से अग्नि को बढ़ाओ तथा उत्तम-उत्तम हवि की आहुतियाँ प्रदान करो। घृत में अग्नि को बढ़ाने की क्षमता होती है।

प्रश्न : समिधा जलाने से तो कार्बनडाईआक्साइट पैदा होती है?

उत्तर : लकड़ी जलाने से अधिक पैदा होती है परन्तु समिधा से बहुत ही कम पैदा होती है। इसलिए तीन समिधाओं को घृत डुबोकर प्रयोग करने की सलाह दी जाती है। और जो सामग्री होती

thearyasamaj.org

है उसमें घृत डालकर आहुति देने का विधान है।

प्रश्न : कुछ लोग तो समिधा एक कोना भिगो कर डाल देते हैं। क्या यह सही है?

उत्तर : यह अनुदारता (कंजूसी) का प्रतीक है। जो लोग ऐसा करते हैं उनके हाथ सूखे रह जाते हैं। उनका जीवन भी सूखा रह जाता है। या तो समिधा को डुबो लें या हाथ से पूरी समिधा पर घी लगा लें। ऐसा करने पर जब समिधा दोनों हाथों से पकड़ कर हवन कुण्ड में स्थापित करें तो यजमान के दोनों हाथ घी में हो जायेंगे जिसको हम इस प्रकार से कह सकते हैं- दसों अंगुलियाँ घी में अर्थात् जितने समर्पण से आप देंगे उतने ही समर्पण से सारे कार्य करेंगे। जितने समर्पित होंगे आत्मविश्वास उतना ही सुख प्राप्त होगा।

प्रश्न : अग्नि कैसी है?

उत्तर : अग्नि का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और अनेक मन्त्रों से हम यह जान सकेंगे। यहाँ इन मन्त्रों में यह बताना चाहते हैं कि अग्नि शुद्ध है और जो भी इसके सम्पर्क में आएगा उसी को यह शुद्ध कर देगी। क्योंकि यह बहुत ज्वालायुक्त होती है। यह दोष-निवारक है और प्रकाशक है। सब से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह **पदार्थों को पहले मिलाती है फिर उनको अलग-अलग कर देती है।** यह घरों में दुर्गन्धियुक्त वायु बाहर निकाल देती है। महर्षि दयानन्द के अनुसार - **और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके, बाहर निकालकर, पवित्र वायु प्रवेश करा देता है।** हवि के रूप में जो कुछ भी अग्नि में डालते हैं चाहे वह सामग्री हो, सूखे मेवे हों, सुगन्धित हों, मीठे पदार्थ हों सबको मिलाती है अर्थात् पचाती है फिर उनको अलग-अलग ऊर्जा में बदल देती है- पौष्टिक पदार्थों को शक्ति में, सुगन्धित को सुगन्ध में, रोगनिवारक को आरोग्य शक्ति से परिपूर्ण करके वातावरण में भेज देती है जिससे प्राणियों को सुख मिलता है।

प्रश्न : अग्नि कैसे काम करती है?

उत्तर : अग्नि अतिथि की तरह काम करती है। अतिथि उसे कहते हैं जिसकी तिथि की जानकारी नहीं होती है- "अविद्यमाना तिथिर्यस्य" उसे अतिथि कहते हैं। यहाँ वर्णन एक ऐसे व्यक्ति का किया जा रहा है जिसके आने की तिथि निश्चित नहीं होती है अर्थात् वह कभी भी आ सकता है।

प्रश्न : क्या सभी व्यक्तियों को अतिथि माना जाये?

उत्तर : नहीं! ऐसे तो कोई भी किसी के यहाँ जा के बैठ जाएगा और उनकी परेशानी का कारण बन जाएगा। आइये! अतिथि की परिभाषा समझने का प्रयास करते हैं- जो मनुष्य पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, सत्यवादी, छलकपट रहित और नित्य भ्रमण करके विद्या का प्रचार और अविद्या की निवृत्ति सदा करते रहते हैं उनको अतिथि कहते हैं।

प्रश्न : व्यक्ति बिना बताए किसी के घर क्यों जाये?

thearyasamaj.org

उत्तर : जब व्यक्ति का काम ही विद्या का प्रचार और अविद्या, पाखण्ड, अन्धकार, भ्रम-भ्रान्ति को मिटाना होता है तो उसको तो घरों में जाना ही पड़ेगा। घरों में नहीं जाएगा तो घरों का सुधार कैसे होगा? बुलाने की प्रतिक्षा करेगा तो सुधार ही नहीं हो पायेगा। क्योंकि कोई यह मानने के लिए तैयार ही नहीं होगा कि उसके घर में कोई कमी है। अपनी बीमारी अपने आप पता नहीं चलती है। डॉक्टर से सलाह लेनी पड़ती है। इसलिए बिना बुलाए ही जा-जाकर घरों का सुधार करे।

प्रश्न : अतिथियज्ञ क्या होता है?

उत्तर : हमारे यहाँ ऋषियों ने पांच महायज्ञों की व्यवस्था की है। जिनको प्रतिदिन करने का नियम हैं इनमें एक यज्ञ अतिथियज्ञ भी है। प्रतिदिन कोई अतिथि हमारे घर आये और हमारे बच्चों को जीवन जीने की सही जानकारी दे। वे भटक न जायें, हानि न कर बैठें, बुराइयों को न ग्रहण कर लें। इससे पता चलता है कि अतिथि का काम कितना महान् होता है? इसलिए अतिथियज्ञ कहते हैं।

प्रश्न : अग्नि और अतिथि में क्या समानता है?

उत्तर : जैसे अतिथि इधर-उधर यात्रा करके सबका भला करता है वैसे घी अग्नि भी अपनी ज्वालाओं द्वारा इधर-उधर फैलता है और सबका भला करता है, सबको लाभ पहुँचाता है। ऐसे ही घर-घर में आग जलती है परन्तु यज्ञ की अग्नि नहीं जल पाती है, दुर्गन्धयुक्त वायु बाहर कैसे निकलेगी यदि अतिथि नहीं आएगा गलत विचार, गलत आदतें कैसे बाहर निकलेंगी तो जीवन-जीने का ढंग कैसे आएगा? जैसे अतिथि को दूध, घी, भोजन से तृप्त किया जाता है वैसे ही अग्नि को समिधा घृत और हवि-मीठे व सुगन्ध युक्त रोगनाशक पदार्थ खिलाने चाहिए। तामसिक पदार्थ न अतिथि को खिलाए और न ही यज्ञ की अग्नि को।

प्रश्नः हमारा काम क्या है?

उत्तर : हमारा काम अग्नि को बढ़ाना और लाभ होना है। यह हम भली-भाँति समझ गये हैं कि अग्नि को समिधा, घृत और हवि से बढ़ाते है। अब प्रश्न यह रहता है कि लाभ कैसे लें? जब हम ईंधन देकर अग्नि को बढ़ाते है तो हम यह भी कहते है कि हमे भी बढ़ाओं-आत्मिक उन्नति से, प्रजा से, पशु से, ब्रह्मतेज से, अन्न से और पचाने की शक्ति से। अब हमारा यह कर्त्तव्य बन जाता है कि हम इन सब चीजों को प्राप्त करने के लिए विशेष प्रयास करकें, खोज करें, स्वाध्याय करें, विद्वानों के मुख से सुनें, कुछ भी करें, कही भी जायें पर इन चीजों को अवश्य प्राप्त करें। इसका तरीका यह है कि जैसे अग्नि तीन चीजों से बढ़ती है वैसे ही यजमान भी तीन चीजों से बढ़ेगा-

1. समिधा- समिधा से अग्नि बढ़ती है। अग्नि समिधा में छिपी रहती है उसको घृत, कपूर आदि की सहायता से जगाते हैं इसी प्रकार सभी की आत्मा में अग्नि छिपी हुई है वह समिधा की तरह दिखाई नहीं देती हैं उसको जगायें अर्थात् आत्मिक शक्ति बढ़ायें। प्राचीन काल में शिष्य अपने हाथ में

thearyasamaj.org

तीन समिधाएँ लेकर गुरु से शिक्षा ग्रहण करने जाता था। गुरु समझ जाता था कि शिष्य क्या चाहता है? आत्मा में छिपी हुई शक्ति को जगाना चाहता है।

2. घृत– घृत से अग्नि बढ़ती है, तेजस्वी बनती है और देर तक चलती हैं घी से शरीर क्रान्ति युक्त होता है। कहा भी गया है– घृतं सन्दीप्तं तेज: घी जलता हुआ तेज है। आयुवैं घृतम् अर्थात् तेजस्वी व्यक्ति देर तक जीवित रहता हैं इसलिए अपने तेज को बढ़ायें।

3. हवि– समिधा और घृत से बढ़ी अग्नि का भोजन हवि है और हवि–पौष्टिक–सुगन्धित–रोगनाशक और मीठे पदार्थो को कहते हैं। इनको खाकर ही अग्नि स्वस्थ रहती हैं हमें भी ऐसे ही पदार्थों को खाना चाहिए। तभी शरीर स्वस्थ और सुदृढ़ बनेगा।

प्रश्न : अग्नि दोष निवारक कैसे है?

उत्तर : व्यक्ति तीन प्रकार के दु:खों से दूषित होता है– **एक प्रकार का दु:ख** उसे अपने आपसे मिलता है। यदि वह व्यायाम नहीं करता, स्वाध्याय नहीं करता है। खान–पान रहन–सहन के ढंग नहीं जानता है तो दु:ख मिलेगा।

दूसरे प्रकार का दु:ख उसे संसार से, संसार के लोगों से, संसार की वस्तुओं से प्राप्त होगा। यदि वह इन लोगों से काम लेना नहीं जानता है।

तीसरे प्रकार का दु:ख उसे देवताओं से मिलता है। कभी सूखा, कभी बाढ़, कभी आंधी, कभी तूफान, कभी अधिक वर्षा से दु:ख प्राप्त होगा। इस प्रकार ये तीन काँटों की तरह हैं जो व्यक्ति को दूषित करते रहते हैं। इनसे अपने आपको बचाने की कोशिश करना हैं जैसे शिव जी महाराज करते हैं। उनके हाथ में एक त्रिशूल हैं शूल काँटे को कहते हैं। त्रिशूल में भी तीन कांटे हैं। शिव जी महाराज ने इनको अपने एक हाथ से पकड़ा हुआ। इन दु:खों पर अपना नियंत्रण रखा हुआ।

अग्नि व्यक्ति को इन दु:खों से बचाती है। और जो इनसे बच गया वहीं शिव कहलाएगा। शिव महाराज भस्म रमाते हैं। यह भस्म क्या हैं? यज्ञ की बची हुई राख हैं इसका अर्थ है यज्ञ की राख यज्ञ का सूक्ष्म भाग होता है। अर्थात् उन्होंने यज्ञ का सूक्ष्म भाग ग्रहण कर लिया है। यज्ञ का सूक्ष्म भाग है– समिधा, घृत और हवि से निर्मित शरीर और आत्मा। शरीर भी स्वस्थ, आत्मा भी शक्तिशाली। बस ऐसा ही बनना है।

जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये।

[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 7]

thearyasamaj.org

हिन्दी आत्मकथा साहित्य को महर्षि दयानन्द की विलक्षण देन

लेखक- डॉ. अशोक आर्य, कौशांबी, गाजियाबाद

भारत देश सदा ही आत्मश्लाघ से दूर रहा है। यही कारण है कि हम भारतवासी अपने महापुरूषों की जन्म तिथियों तथा उनकी कृतियों से आज भी अछूते हैं। प्राचीन महापुरूषों, यहां तक कि राम, कृष्ण सरीखे महापुरूषों की बात तो छोड़िए, लगभग 150 वर्ष से पूर्व तक भी भारत में इसी परम्परा का पालन निरन्तर होता रहा। परिणाम स्वरूप हमारे महापुरूषों, राजनेताओं, समाज सुधारकों, कर्मवीरों, कवियों आदि के जन्म; परिवार, रहस्यों व मृत्यु दिवस आदि की जानकारी से आज भी हम वंचित हैं। हां! लगभग ग्यारहवीं शताब्दी के पश्चात् किंचित सा परिवर्तन हमारी विचार धारा में अवश्य दिखाई देता है, जब कि हिन्दी साहित्य के आदि कालीन कवियों ने कुछ संकेत अपने पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा जन्म तिथि आदि के सम्बन्ध में अपनी कविताओं अथवा कृतियों में छोड़ने आरम्भ किये। सम्भवतया यही संकेत ही आगे चलकर हिन्दी आत्मकथा साहित्य के श्री गणेश के प्रेरणा स्रोत बने हों। आज आत्मकथा साहित्य यद्यपि हिन्दी जीवनी साहित्य विधा से अलग होकर एक स्वतंत्र विद्या बनने की ओर अग्रसर है, चाहे अभी इसे हिन्दी जीवनी साहित्य के एक अंग स्वरूप ही देखा जा रहा है। अत: आओ प्रथमत: हम इसे जानें कि आत्मकथा साहित्य कहते किसे हैं?

आत्मकथा की परिभाषा देने वालों में 1945 ई0 में विलियम हेनरी हडसन ने अपनी पुस्तक An Introduction to the Study of Literature (Page No. 11,14) नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी शब्द सागर के पृष्ठ 1772, आदर्श हिन्दी शब्दकोष Encyclaopedia britanica Part 2, Page 953, Page Encyclopedia Americana Part 3, Page 722 हेराल्ड बिक न्सन की पुस्तक The Development of Engaglaish Biography 1942, धर्मवीर भारती कृत "मानव मूल्य और साहित्य" पृष्ठ 28 भगकात कारण भारद्वाज कृत हिन्दी जीवन साहित्य पृष्ठ 28 विश्वनाथ प्रताप सिंह कृत "भारतीय साहित्य : परिशीलन तथा अन्वेषण" पृष्ठ 44, चन्द्रावती सिंह कृत "हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास" "पृष्ठ 12, आर्य मित्र कृतं An History of Autaobiography Enticity 1950 पृ० 1, डा० नारायण वी शर्मा "हिन्दी आत्मकथा" 1978 पृ० 26, महात्मा गांधी "सत्य के प्रयोग" पृष्ठ 4, मेरा (डा० अशोक आर्य) शोध प्रबन्ध "आर्य समाज का हिन्दी

thearyasamaj.org

जीवनी साहित्य को योगदान'' पृ० 8 आदि तथा अनेक व्यक्तियों, शब्द कोषों व विश्व कोषों में आत्मकथा शब्द का जो अर्थ दिया है, उन सभी का सार इस प्रकार आरम्भिक काल, जिसे भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता है, के प्रणेता वैष्णव पन्थी ''भारतेन्दु हरिशचन्द्र'' भी न केवल महर्षि की साहित्यिक धारा से प्रभावित हुए अपितु महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने कथा प्रसंगों में जिन कथाओं का वर्णन करते थे, भारतेन्दु बाबू उन्हीं कथाओं के कई अंशों का ही आधार बना कर नाटकों की रचना करने लगे। (वह महर्षि के समकालीन थे) इस कारण हिन्दी साहित्य के इस काल खण्ड को ''हिन्दी साहित्य का दयानन्द युग'' का नाम देना अधिक उत्तम व समीचिन होता, किन्तु हिन्दी साहित्य धारा पर वैष्णवों की सत्ता होने के कारण वैष्णवी ''भारतेन्दु'' का नाम इस काल खण्ड को दे दिया था। यह महर्षि दयानन्द सरस्वती के साथ एक बहुत बड़ा अन्याय था।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की आत्मकथा सम्बन्धी विश्लेषण करने से पूर्व उनके संक्षिप्त जीवन का परिचय भी आवश्यक हो जाता है। अतः आओ प्रथमतः उनके जीवन पर भी विहंगम सी दृष्टि डालें : सन् 1824 इस्वी में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म गुजरात प्रान्त के मौरवी क्षेत्र में स्थित स्थान टंकारा में हुआ। सन् 1829 में इनकी शिक्षा घर पर ही आरम्भ हुई। 1832 में उपनयन संस्कार हुआ तथा 1837 में शिवरात्रि जागरण में मूर्तिपूजा से मोहभंग हुआ। 1841 में बहिन तथा 1842 में चाचा की मृत्यु से दुःखी मूलशंकर बालक (स्वामी दयानन्द) घर छोड़ दिये। जंगलों में साधुओं व योगियों की शरण में सच्चे शिव की खोज करते रहे। स्वामी पूर्णानन्द जी से संन्यास दीक्षा लेकर, उन्हीं के आदेश पर तीन वर्ष तक घूम-घूम कर तात्कालीन राजाओं व सैनिकों को स्वाधीनता हेतु शस्त्र उठाने की प्रेरणा देते हुए तैयार करने में लगे रहे, जिसका परिणाम 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम स्वरूप सामने आया। तदन्तर माथुरा में गुरू विरजानन्द दण्डी से ज्ञान प्राप्त कर देश से अज्ञान, अन्याय तथा अभाव को दूर करने हेतु कार्य क्षेत्र में उतरे। स्त्री की दयनीय दशा, छुआछुत, हिन्दी प्रचार, स्वदेशी, स्वाधीनता, गौ रक्षा, हेतु प्रचार आदि द्वारा समाज को झिंझोड़ते हुए अनेक बार विरोधियों द्वारा, विष पिलाने, पत्थर मारने व गाली गलौज से भी विचलित न हुए तथा अन्त में विषपान से ही उनके शरीर का त्याग हुआ, किन्तु जाते जाते धरोहर स्वरूप आर्य समाज रूपी विशाल संस्था 1875 में स्थापित कर एवं वेद भाष्य देकर 1883 ईस्वीं में यहां से सदा के लिए विदा हुए।

स्वामी जी की आत्मकथा

महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रभावोत्पादक व्याख्यानों व प्रवचनों को सुनकर

thearyasamaj.org

जन जन में महर्षि की जीवन गाथा का परिचय प्राप्त करने की उत्कृष्ट अभिलाषा बढ़े जनमानस में उत्पन्न हुई। स्थान स्थान पर लोग उनसे अपने विगत जीवन सम्बन्धी प्रश्न करने लगे। महर्षि कर्म में विश्वास करते थे, पारिवारिक विरासत को उन्होंने कभी कोई भाव नहीं दिया। पारिवारिक मोह बन्धन से स्वयं तो बहुत ऊंचे उठ चुके थे, किन्तु उन्हें इस बात का भय था कि यदि उनके परिजनों को उनका परिचय मिल गया तो निश्चित तौर पर उनका मोह उनके सेवा कार्यों में बाधा डालेगा। इस कारण लम्बे समय तक उन्होंने अपनी पारिवारिक स्मृतियों को कभी भी किसी के सम्मुख नहीं रखा। इसी मध्य सन् 1874 में स्वामी जी पूना पधारें। यहां उन्होंने 4 जुलाई से 4 अगस्त 1875 तक कुल पन्द्रह उपदेश दिए। यहां अपने भक्तों के आग्रह को स्वमी जी टाल न सके। अत: 4 अगस्त 1875 ईस्वीं को पूना में इस लडी के अन्तर्गत दिए गए अपने अन्तिम व पन्द्रहवें व्याख्यान को उन्होंने अपने जीवन परिचय तक सीमित रखा। इसमें उन्होंने अपने जन्म से पूना पहुंचने तक का परिचय दिया। यह उनके आत्म कथन के रूप में जीवन परिचय का प्रथम स्रोत था।

स्वामी जी द्वारा पूना में दिए गए अपने जीवन सम्बन्धी इस व्याख्यान के लगभग के चार वर्ष पश्चात् थियोसोफिकल सोसायटी के अन्यतम प्रवर्तकों में से एक कर्नल एच एस आल्काट के अनुरोध पर महर्षि ने अपना आत्म चरित लिखने का कार्य आरम्भ किया। यह लिखते हुए भी उन्होंने अपनी व्यस्तताओं को कम नहीं किया। इस कारण वह इसे एक साथ नहीं लिख सके। जितना लिखते, उसे भेज देते। कर्नल आल्काट इस हिन्दी में लिखे स्वामी जी के आत्म कथन को अनुदित करवा कर अंग्रेजी में बदलते तथा अडबार प्रेस, मद्रास से प्रकाशित होने वाले ''थियोसाफिस्ट पत्रिका'' में प्रकाशित हुआ, वही ही प्रामाणिक रूप से उनके आत्म कथन के रूप में उपलब्ध है। इसके पश्चात् स्वामी जी की व्यस्ताताएँ बढ़ जाने तथा कर्नल अल्काट से कुछ मतभेद हो जाने के कारण स्वामी जी ने आत्मकथन का आगे बढ़ाने से रोक दिया।

दुर्भाग्य से अंग्रेजी में प्रकाशित इस आत्म कथन की मूल हिन्दी प्रति गुम हो जाने से इसकी वैधता पर सन्देह होने लगा। परोपकारिणी सभा अजमेर के पूर्व मन्त्री तथा पंजाब विश्वविद्यालय की महर्षि दयानन्द अनुसन्धान पीठ के पूर्व निर्देशक (मेरे पी एच डी के शोध निर्देशक) डा० भवानी लाल भारतीय जी ने परोपकारिणी सभा के संग्रह में मुन्शी समर्थदान जी के वस्ते से इस आत्मचरित की प्रथम दो प्रतियों को मूल रूप में खोज निकाला। इनकी प्रतिकृति को परोपकारी पत्र के मार्च 1975 के अंक में प्रकाशित किया। इसका तृतीय भाग पं० भगवद्दत जी द्वारा प्रकाशित'' ऋषि दयानन्द का स्वयं लिखित एवं

thearyasamaj.org

कथित आत्म चरित'' में प्रकाशित किया गया है। इसमें नर्मदा तट परिभ्रमण तक की घटनाओं का वर्णन है। यह पूणा प्रवचन से भी अल्पकाल तक सीमित है। तथापि इसमें घटनाओं की चर्चा पूना प्रवचन से कहीं अधिक विस्तार से दी हैं। लिखित होने के कारण इसकी प्रामाणिकता भी स्वयंसिद्ध है।

यहाँ एक बात का उल्लेख और भी आवश्यक है। वह यह कि सम्भवतया यह विश्व का एक मात्र आत्मचरित होगा जो मूलरूप में लिखा तो हिन्दी में गया, किन्तु इस का प्रथम प्रकाशन अनुवाद हो कर अंग्रेजी में हुआ। अंग्रेजी में प्रकाशन के पश्चात् इसकी मूल हिन्दी प्रति खो जाने के कारण इसे पुनः अंग्रेजी से हिन्दी में उल्था अनुवाद कर पुनरानुदित ग्रन्थ स्वरूप हिन्दी में प्रकाशित किया गया। इसी कारण इसकी प्रामाणिकता पर उंगली उठने लगी। सन् 1875 ईस्वी में इसकी मूल प्रति मिल जाने के कारण सन्देह की सूई भी समाप्त हो गई। डा॰ भवानी लाल भारतीय द्वारा प्रकाशित इन प्रथम अंशों के लेखन दोष से स्खलित हुए स्थलों को शुद्ध करके पं॰ भगवद्दत तथा फिर पं॰ युधिष्ठिर मीमांसक जी ने इसे पुनः प्रकाशित किया। आज स्वामी जी का यह आत्म चरित अनेक रूपों व अनेक भाषाओं में उपलब्ध है। वास्तव में आत्म चरित को हम खण्ड जीवन चरित कह सकते है। लेखक अपना जीवन चरित स्वयं लिखता है, इस कारण इस में जीवन चरित की अधिक से अधिक उस समय तक की घटनाएं समाविष्ट हो सकती हैं, जब यह लिखा गया हो। अतः आत्म चरित को अधूरा जीवन चरित या खण्ड जीवन चरित भी कहा जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी का यह आत्मचरित भी उनके जीवन के आरम्भ से अन्त तक पूर्ण परिचय देने में तो असमर्थ है ही किन्तु जितना प्राप्त है उतने में इसकी प्रामाणिकता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। महर्षि के इस आत्म कथन में एक बात खटकती है, वह यह कि अपनी पारिवारिक जानकारियों को महर्षि ने छुपाने का प्रयास किया है, किन्तु इसका कारण आत्मकथन की आरम्भिक पंक्तियों में स्वयं ही देकर वह इस दोष से मुक्त हो गए हैं। इस सम्बन्ध में स्वामी जी ने अपनी आत्मकथा के आरम्भ में इस प्रकार लिखा है : ''संवत् 1891 के वर्ष में मेरा जन्म दक्षिण गुजरात प्रान्त देश काठियावाड का मजोकठा देश मौर्वी का राज्य औदिच्य ब्राह्मण के घर में हुआ था, यहां अपने पिता को और निज निवास स्थान के प्रसिद्ध नाम इसलिये मैं नहीं लिखता कि जो माता-पिता आदि जीते हो, मेरे पास आवें तो सुधार के काम में विघ्न हो, क्योंकि मुझकों उनकी सेवा करना उनके साथ घूमने में श्रम और धन का व्यय करना नहीं चाहता। आगे हिन्दी साहित्य में इस आत्म कथा का मूल्यांकन करते हुए अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य सामने आवेंगे, किन्तु कुछ पूर्वाग्रहों से ग्रसित

thearyasamaj.org

शोधकर्त्ताओं ने उन तथ्यों को नकारने अथवा छुपाने के उद्देश्य से इस जीवनी (जो कि अनेक आवृतियों से युक्त, यहां तक कि मूल रूप में भी उपलब्ध है) की उपलब्धता पर ही प्रश्न चिन्ह लगाते हुए इसे उद्दृत करने से बचने का प्रयास किया है। ऐसा ही एक धूर्तता पूर्ण प्रयास जान बूझ कर डा॰ सरोज जग्गी ने किया है। (वह एक ऐसे नगर की निवासी हैं, जहां महर्षि के आत्म कथन की यह पुस्तक हजारों की संख्या में सदैव उपलब्ध रहती है।) वह अपने अप्रकाशित शोध प्रबन्ध "हिन्दी साहित्य में आत्मकथा" के पृष्ठ 83 पर महर्षि की आत्मकथा का उल्लेख करते हुए बड़ी धूर्तता के साथ लिखती हैं कि "श्री दयानन्द सरस्वती ने स्वयं आत्म चरित लिखा किन्तु वह कहीं उपलब्ध नहीं है।", ऐसे कपोल कल्पित वर्णन युक्त शोध ग्रन्थ को सम्भवतया उस दिल्ली विश्वविद्यालय ने पी एच डी की उपाधि के लिए स्वीकार किया है, जिस दिल्ली में यह ग्रन्थ हजारों की संख्या में उपलब्ध है।"

महर्षि की आत्मकथा का मूल्यांकन तथा हिन्दी में प्रथम आत्मकथा की खोज : आधुनिक हिन्दी साहित्य का आरम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। उन्हें हिन्दी गद्य का प्रवर्तक होने का गौरव भी प्रदान किया गया है। वास्तव में भारतेन्दु बाबु तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती समकथा थे। दोनों ने हिन्दी गद्य को भरपूर योगदान दिया। यही खड़ी बोली का युग था। यहां यह भी उदृत करना समीचीन ही होगा कि भारतेन्दु बाबू वैष्णव पन्थी थे, काशी शास्त्रार्थ के अवसर पर वह भी उन लोगों की टोली में थे, जो स्वामी जी काशी गए तो भारतेन्दु बाबू उनकी अगुवानी के लिए स्टेशन पर उपस्थित थे। इतना ही नहीं साहित्य रसधारा में भी स्वामी जी का अनुगमन करने लगे, यथा स्वामी जी ने अपना आत्म कथन लिखा तो भारतेन्दु बाबू ने भी एक आठ पृष्ठ का आत्म जीवन लिख डाला। वह स्वामी जी के इतने अनुरागी हो गए, इतने दीवाने हो गए कि अपनी साहित्यिक पत्रिका के सम्पादक मण्डल में भी स्वामी जी का नाम सबसे ऊपर रखा। डा॰ शान्ति खन्ना ने जिन 25 ग्रन्थों को हिन्दी गद्य के जीवनी साहित्य को हिन्दी जीवनी साहित्य के आरम्भिक जीवनी ग्रन्थ स्वीकार किया है, उनमें से दो महर्षि दयानन्द सरस्वती के मिलते हैं। इस काल खण्ड में मात्र तीन ग्रन्थ अनूदित मिलते है, जो किसी अन्य भाषा से हिन्दी में आए। इन में से भी दो ग्रन्थ आर्य समाज से सम्बन्धित हैं, जबकि एक महर्षि दयानन्द से सम्बन्धित है। हिन्दी जीवनी साहित्य की सहयोगी विधा हिन्दी आत्मकथा साहित्य का जहां तक प्रश्न है, मेरे शोध प्रन्थ का भी यही निष्कर्ष है तथा मैं इस विचार पर स्थिर हूं कि "महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का स्वकथित व स्वलिखित जीवन चरित" हिन्दी गद्य साहित्य में लिखा यह प्रथम प्रकाशित आत्मचरित है,

thearyasamaj.org

जिसको लिखा तो हिन्दी में गया किन्तु जिसका प्रथम प्रकाशन अंग्रेजी में हुआ। इस आत्म चरित की तीसरी विशेषता यह है कि मूलरूप में हिन्दी में लिखे गए इस आत्मचरित को हिन्दी में प्रकाशित करने के लिए इसे अंग्रेजी से पुनः हिन्दी में अनुदित करना पड़ा। सम्भवतया यह विश्व साहित्य का प्रथम आत्मचरित होगा जो मूल रूप में एक भाषा में लिखा गया, प्रथम प्रकाशन किसी दूसरी और वह भी विदेशी भाषा में हुआ तथा मूल भाषा में प्रकाशनार्थ इसे दूसरी भाषा में प्रकाशनार्थ इसे दूसरी भाषा से पुनः मूल भाषा हिन्दी में अनुदित करना पड़ा। इस आत्म चरित की चौथी तथा मुख्य विशेषता यह है कि इसने धार्मिक पुरूषों, समाज सेवकों, राजनेताओं, साहित्य-करारों आदि को एक नई दिशा प्रदान की कि वह भी अपने जीवन के अनुभवों को आत्म चरित के माध्यम से लोगों के सामने रखें ताकि भावी सन्तति उनके जीवन से प्ररित होकर नवजागरण का कार्य करे।

कुछ लोग इस आत्मचरित को हिन्दी साहित्य का प्रथम प्रकाशित आत्म चरित होने की चर्चा पर अंगुली उठाते हुए जैन कविबनारसी दास के आत्मचरित को यह बताते हुए आक्षेप करने वाले लोग इस बात को समझ नहीं पाए कि उपर्युक्त जैन कवि का आत्म चरित चाहे महर्षि से बहुत पहले लिखा गया किन्तु लेखन के तीन सौ वर्ष बाद तक भी प्रकाशन की प्रतीक्षा करते हुए अन्धकार में धूल चाटता रहा। किसी को इसके अस्तित्व का ज्ञान भी न हो सका। सन् 1943 ईस्वी में जैन पुस्तकालय से निकाल कर नाथूराम प्रेमी ने इसे प्रकाशित किया, जबकि इससे लगभग 50 वर्ष पूर्व महर्षि का आत्म कथन प्रकाशित होकर लोगों के हाथों में आ चुका था। हो सकता है इसी प्रकार के और भी कई आत्मचरित अज्ञात् स्वरूप कहीं दबे पड़े अपने प्रकाशन की आज भी प्रतीक्षा कर रहे हों। ऐसे ग्रन्थों को हम प्रथम प्रकाशन की श्रेणी में नहीं रख सकते। अतः हम निश्चित रूप से यह निष्कर्ष निकालते हैं कि महर्षि का यह स्वकथित व स्वलिखित आत्मचरित ही हिन्दी साहित्य का प्रथम प्रकाशित आत्मचरित है जो आज भी समाज को नवजागरण के लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। अन्त में मैं यह कह सकता हूं कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का यह आत्मकथन ग्रन्थ विश्वसाहित्य की अनमोल निधि है जो अपने में अनेक साहित्यिक विशेषताएं संजोए हिन्दी साहित्य की महान् कृति है जो आज भी निरन्तर जन जन का मार्ग दर्शन करने वाली महान् साहित्यिक धरोहर है, जिससे प्रेरित हो कर हिन्दी जीवनी साहित्य को ठोस आधार मिला व आज अति समृद्ध हुआ है।

●

thearyasamaj.org

ऋतस्तस्य पंथा न तरति दुष्कृत :

-पं० उमेद सिंह विशारद, देहरादून

ऋग्वेद यह कहता है कि सत्पथगामी के लिये सत्य बोलना और सत्कर्म करना कितना अनिवार्य है। **नास्ति सत्यात् सपरोधर्मः**- अर्थात् सत्य से उत्तम कोई धर्म नहीं है। मनु महाराज जी ने उचित ही कहा है, हमारे किसी भी कथन की सार्थकता तब है, जब हमारे कर्म, हमारी वाणी के अनुरूप हो। ईश्वर भक्त को भक्ति के साथ सत्कर्म करने वाला होना चाहिए, तभी ईश्वर भक्ति कहलायेगी। प्रभु का निरन्तर ध्यान से स्वच्छ हृदय होने लगता है और मनुष्य जगत् में सर्वत्र परमात्मा का आभास करने लगता है।

जब कोई मन, बचन, कर्म से एक रूप हो जाता है तो वह देवत्व की ओर बढ़ने लगता है, तब वह मानव कल्याण की बात करने लगता है। जब हम **मनसा वाचा कर्मणः** एक रूप होंगे तो हमारी से प्रार्थना कर बैठेगी। **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः** । यह जगत तपोभूमि भी है और कर्म भूमि भी है। वेदों मे इसलिए प्रार्थना की गई है कि मेरे प्रवृति मधुमय हो, मेरी विकृति भी मधुमय हो इसका तात्पर्य यही है कि यदि सत्यं शिवम् सुन्दरम् की भावना हमारे मन में हो और मनसा, वाचा, कर्मणा से एक रूप होने से सफलता मिल सकती है।

मानव जीवन के अन्तःकरण की वृत्ति तीन कोटि की होती है, सात्विक, राजसी और तामसिक। सात्विकी भावना ईश्वर परक आत्मा की कल्याणकारी है। राजसी, जगत के, विषय भोगों की भावना है। हिंसापरक अज्ञानता से परिपूर्ण तामसी भावना है और सात्विक भावना जगत के बन्धनों वाली है। स्वभाव के अनुसार भावना, भावनुसार इच्छा, इच्छानुसार कर्म, कर्मानुसार स्वभाव के आधार पर पुनः भावना निर्मित होती है और बुरी भावना कर्म विनष्ट होकर ही अन्तःकरण पवित्र करके परमात्मा में जोड़ी है। यह सत्य है कि कुसंग का प्रभाव बिना कोई प्रयास किये तुरंत ही पड़ता है और सत्य संग का प्रभाव देर में पड़ता है। चित्त की चंचलता, हृदय की मलिन्ता, अकर्मण्यता, आलस्य का प्रतिकूल स्वभाव के कारण सत्पुरूषों का व्यक्तित्व देर से प्रभावित होता है।

जिस दिन ईश्वर, संसार आत्मा और मानव शरीर के संबंधों की गरिमा का ज्ञान होगा, उस दिन हमे जीवन की वास्तविकता का ज्ञान हो जायेगा। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में सुख शान्ति व समृद्धि चाहता है। परन्तु बदले में समाज व राष्ट्र को क्या देता है, विचारणीय है। ईश्वर, संसार, आत्मा और मानव शरीर का आपस में अन्योन्याश्रित संबंध है। एक के बिना दूसरे की गणना नहीं की जा सकती है। इसलिये हमें ईश्वर, आत्मा, शरीर व समाज के साथ सामन्जस्य बनाना पड़ता है।

प्रायः हमारी सारी उम्र खाने-पीने व

thearyasamaj.org

परिवार के पालने में ही निकल जाती है और जब आत्म बोध होता है तब यह शरीर दिलोदिमाग साथ नहीं दें पाता हैं तब बहुत देर हो चुकी होती है। इसके लिये सतत प्रभु स्मरण सेवा भाव संयम सदाचार आदि ऐसे सद्गुण हैं, जो हमें आत्मबोध के मार्ग पर ले जाते हैं। सद्गुण प्रत्येक स्थिति में मनुष्य का कल्याण करते हैं।

माता-पिता का बच्चों का पालन-पोषण, लाड-प्यार प्राकृतिक है, जो प्रकृति करती है, किन्तु मनुष्य अहंकार वश अपने को प्रेम करने वाला समझता है। यह प्रेम सामाजिक है। इसीलिये तो अपने-अपने उद्देश्य की पूर्ति के बाद यह प्रेम बिखर जाता है। किन्तु जो मनुष्य अपने दायित्वों को पूरा करते हुए परमात्मा से प्रेम करता है, यह अलौकिक एवं अमृत सुख प्राप्त करने वाला प्रेम है। यह प्रेम, धन, यौवन, स्वार्थ, ज्ञान, तप, इच्छा भावना से परे है।

मनुष्य का जीवन सूर्य की तरह गतिमान है। सूर्योदय उसका जन्म है, दोपहर, जवानी और सांझ वृद्धावस्था है और सभी में जीवन की कहानी के समापन का प्रतिक है, जीवन मृत्यु दोनों सत्य हैं। यह जीवन का परम सत्य है। जन्म से मृत्यु तक सुख अस्थायी नहीं रहता। किन्तु एक बात स्मरण रखनी चाहिए कि वृद्धावस्था तो जीवन का सुनहरा अध्याय है। जिसने जीवन जीना सीखा है, उसके लिए वृद्धावस्था अनुभवों से भरा जीवन होता है। जवानी में दूसरो के लिये जीता है और वृद्धावस्था में अपने कल्याण के लिये जीता है। वृद्धावस्था में शान्ति से जियो। मनुष्य जीवनभर पर शान्ति की खोज में रहता है, उसका परिणाम वृद्धावस्था में प्राप्त होता है। ज्ञान भक्ति और कर्म के विविध मार्ग यदि न बने तो शान्ति प्राप्ति के लिये एक मार्ग परमात्मा की शरण में जाने का मार्ग भी है। यह मार्ग अहम् भाव को तिरोहित करने का है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने स्वयं जब ईश्वर को प्राप्त किया अर्थात् अनुभूति प्राप्त की तो वह ऋषि कहलाये। तभी तो उन्होंने संसार के प्रपंचों से हटाने की शिक्षा कदम- कदम पर दी है। उन्होंने मनुष्य को ईश्वर की ओर मोड़ने के लिये एक अद्भुत ज्ञानवर्धक कल्याणकारी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश लिखा और उसमें 11 सम्मुलास केवल मनुष्यपन से देवत्व की ओर ले जाने के लिये लिखे हैं। आश्चर्य होता है कि, युगों बाद एक देवता ने ईश्वरीय परम्परा को स्थापित करने के लिये कितने कष्ट सहे। सम्पूर्ण संसार एक तरफ और ईश्वर भक्त ऋषि एक तरफ थे। उन्होंने कहा जो हमें दीखता है, वह असत्य है और नहीं दीखता वह सत्य है। जो चलायमान अस्थिर है, परिवर्तनशील है, वह दिखता ही भर है, वास्तव में वह अपरिवर्तनशील तत्त्व के ही आधार पर टिका हुआ हैं अचल स्थिर अपरिवर्तनशील तत्व न हो तो परिवर्तन हो ही नहीं सकता है। हर गति अगतिशिलता के कारण टिकी हुई है। इसलिए दृश्य परिवर्तनशील और अदृश्य है तो शरीर दृश्य है, इसी प्रकार संसार के प्रत्येक पदार्थ दृश्य परिवर्तनशील हैं और उनका आधार परमात्मा के गुण अपरिवर्तनशील हैं।

thearyasamaj.org

अंधविश्वास-निर्मूलन

पिछले अंक का शेष...

लेखक- मदन रहेजा, मुम्बई

अंधविश्वास : 23 : लक्ष्मी का आह्वान करने से ही लक्ष्मी घर में आती है और वह घर में रहती है- पुराणों में ऐसा लिखा है।

निर्मूलन : लक्ष्मी, नारायण की पत्नी है। पौराणिक कल्पनाओं के अनुसार जैसे शंकर की पत्नी पार्वती है वैसे ही नारायण की पत्नी लक्ष्मी है। आप किसी की पत्नी को अपने घर में बुलाकर बसाना चाहते हैं- यह तो धर्म के विरूद्ध बात है! है ना? अगर लक्ष्मी को पहले उसके पति को आमंत्रण देना जरूरी है। पति-पत्नी दोनों ही साथ-साथ आएँ- यही धर्म कहता है।

नारायण को ही विष्णु कहते हैं। नारायण और विष्णु का एक ही अर्थ है- जो कण-कण में विद्यमान रहता है वह विष्णु है, जो नर-नारी के हृदय में रहता है उसे नारायण कहते हैं। (पुराणों में ब्रह्मा-विष्णु-महेश- ये सब एक ही ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार नाम रखे गए हैं। ईश्वर एक है, परन्तु उस प्रभु के अनेक नाम हैं क्योंकि वह अनन्त गुण-कर्म-स्वभाववाला है।)

यज्ञ को विष्णु भी कहा गया है। ईश्वर यज्ञस्वरूप है, अतः आप स्वः वहाँ निवास करेगी। जिस घर में प्रतिदिन यज्ञकर्म होता है- अग्निहोत्र होता है, उस घर में सुख-सम्पत्ति -समृद्धि और शान्ति का वास होता है। जहाँ प्रभु बसतेहैं उस घर में किसी चीज़ की कमी परोपकार के सभी कर्म 'यज्ञ' कहलाते हैं, तभी तो यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा गया है। वेद का भी यही आदेश है कि जो स्वर्ग की कामना करते हैं उन्हें यज्ञ करना चाहिए।

यज्ञकर्ता ही स्वर्ग के अधिकारी हैं। स्वर्ग क्या है?- सुख-विशेष को स्वर्ग कहते हैं, दुःखविशेष को ही नरक कहते हैं। स्वर्ग या नरक इसी संसार में मिलता है। स्वर्ग-नरक कोई स्थानविशेष नहीं हैं जैसे साधारण लोग कल्पना करते हैं।

जो लोग चाहते हैं कि उनके पास हमेशा धन-दौलत के भण्डार भरपूर रहें-कभी धन का अभाव न हो, उन सबको चाहिए कि ये अपने घर में अग्निहोत्र किया करें जिससे वायुमंडल तो शुद्ध होता ही है, साथ-साथ स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है, कभी बीमारी नहीं आती, बुद्धि का विकास होता हे, शारीरिक-मानसिक-सामाजिक उन्नति होती है, धन-दौलत की कभी कमी नहीं रहती और जीवन में सुख-सम्पदा-समृद्धि रहती है। बस यही तो स्वर्ग है जो सभी चाहते हैं।

यदि लक्ष्मी चाहते हैं तो नारायण को आमंत्रण देना ही होगा। जब प्रभु से मित्रता करेंगे

thearyasamaj.org

तो क्या प्रभु अपने भक्त को समृद्ध नहीं करेगा? परमपिता परमात्मा सबका बन्धु-मित्र-माता-पिता-स्वामी है। जितनी-जितनी उससे दोस्ती करेंगे, उसकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे, उसके कहे (वेद) को जानेंगे-मानेंगे, उतना ही अपने लक्ष्य की ओर शीघ्रातिशीघ्र आगे बढ़ते जाएँगे।

अंधविश्वास : 24 : काँच का टूटना शुभ माना जाता है और टूटे हुए काँच को घर में रखना अशुभ माना जाता है।

निर्मूलन : गलती से या बेखबरी में काँच की बनी कोई वस्तु टूट जाए तो वह तो जुड़ नहीं सकती, अतः इसी में संतोष कर लेना कि चलो जो हो गया उसकी चिन्ता क्यों करें और अब चिन्ता करने से भी क्या लाभ? अतः इसे शुभकार्य समझकर मन की संतुष्टि कर लेने में ही समझदारी है। टूटे हुआ बारीक टुकड़ा पानी के साथ गले में उतरकर जीवन खतरे में डाल सकता है। ऐसे अशुभ काँच को कूड़े में फेंकना ही उचित है।

शीशे में, दर्पण में दरार आ गई, सो तो ठीक होनेवाली नहीं और उसमें अपनी शक्ल देखेंगे तो भद्दा-सा लगता है। शक्ल-सूरत तो अपनी है परन्तु उसे दो भागों में देखना खलता है। ऐसे दर्पण को फेंक देना ही ठीक है। इसी कारण उसे अशुभ माना जाता है।

टूटे हुए काँच या दर्पण को कटवाकर छोटे साइज़ में उपयोगी बना लें तो कोई आपत्ति/अशुभ वाली बात नहीं होगी। टूटी हुई वस्तु कोई भी हो, न देखने में अच्छी, न उपयोग में आ पाएगी, इसीलिए अशुभ-सी लगती है।

काँच के टूटने में 'शुभ' होनेवाली कोई बात नहीं। चाव से खरीदे गए दस-दस लाख मूल्य के काँच के फानूस या झाड़ शुभ मानकर ही तो सजाए जाते हैं। उन्हें तोड़ना या उनका टूटना 'अशुभ' ही होगा, शुभ नहीं। मन से यह भ्रम निकाल दें कि काँच का टूटना शुभ होगा।

जिन दुकानों में काँच के सामान बिकते हैं या जहाँ बड़े-बड़े काँच बिकते हैं- कितना सँभालकर काम करते हैं! वहाँ अगर कोई बड़ा काँच टूट जावे तो क्या वह शुभ माना जाता है? कभी नहीं। बड़ी-बड़ी दुकानों में- ऑफिस में बड़े-बड़े Showcase काँच के होते हैं। काँच लापरवाही से टूट जाए तो वहाँ उसे क्या शुभ मानेंगे? कभी नहीं। अगर काँच तोड़ते हैं या टूट जाते हैं तो क्या शुभ होता है? इंश्योरेंस का भुगतान देना पड़ता है। काँच का टूटना न तो शुभ है, न ही अशुभ। ये तो मन को दिलासा देने की बातें हैं। शुभ-अशुभ बताकर हम अपने-आपको तसल्ली देते हैं। यह भ्रम मन से हटा देना चाहिए। शुभाशुभ होना मनुष्य के कर्मों पर निर्भर करता है। काँच के टूटने न टूटने से कुछ नहीं होता

thearyasamaj.org

अर्थात् इसका शुभ-अशुभ से कोई वास्ता नहीं है।

अंधविश्वास : 25 : रात्रि में झाड़ू नहीं मारना **चाहिए और कूड़ा बाहर नहीं फेंकना चाहिए- इससे बरकत (समृद्धि) चली जाती है।**

निर्मूलन : हमारी कुछ प्रथाएँ बड़ी सारगर्भित हैं जो हमारे पूर्वजों ने सोच-समझकर लागू की थीं। प्रायः घरों के छोटे-छोटे ज़ेवर और कीमती कागज़ों के पुर्जे इधर-उधर गिर जाते हैं। दिन के उजाले में घर बुहारें तो कूड़े में अलग दिखाई दे जाते हैं, परन्तु रात को नज़र नहीं आते। इसी कारण रात को या अँधेरे में बुहारने की मनाही कर दी। यह कोई भ्रान्ति नहीं है। इस प्रथा को सोच-समझकर लोगों ने अपनाया है। यदि घर में उजाले की कमी नहीं तो घर को रात्रि में भी बुहारने की कोई हर्ज नहीं। बुहारने पर भी, बाहर फैंकने की जरूरत नहीं, क्योंकि अँधेरे में कूड़ा घर के आगे बिखरेगा जो अशुभ आचरण है। अँधेरे में कूड़ा किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के सिर पर गिर सकता है। कूड़े के ढेर में उलझकर कोई आँधे मुँह गिर सकता है। इसीलिए रात्रि में झाड़ू नहीं मारना चाहिए। इसे वहम या अंधविश्वास न समझें। जब कभी कूड़ा-करकट हो उसे साफ करना ही चाहिए। रात्रि में जहाँ हम शयन करते हैं, वहाँ साफ-सफाई करके ही सोना चाहिए। घर में गंदगी है और झाड़ू लगाना आवश्यक है तो क्या झाड़ू नहीं लगाना चाहिए? घर की सफाई अच्छी आदत है। गंदगी में कोई नहीं बैठना चाहता। लोग तो सबुह-शाम दोनों बार नहाते हैं। रात को हम देर से घर में आएँ, तो भी पहले नहाते हैं बाद में भोजन करते हैं।

झाड़ू मारकर कूड़ा बाहर नहीं फैंकना चाहिए। अगर घर के बाहर कचरे के डब्बे रखे हैं तो उनमें डालना चाहिए। हाँ, गल्ली-मुहल्ले में यहाँ-वहाँ कचरा फैंकना नहीं चाहिए। स्वच्छता का ध्यान जितना अपने घर में करते हैं, उतना ही घर के बाहर भी रखना चाहिए। इससे सबको लाभ ही होता है। शुद्ध वातावरण में रखना चाहिए। कचरा बाहर डब्बे में फैंकने (डालने) से अगर बरकत जाती है तो ऐसे लोगों से कहना चाहिए कि वे उस कचरे को सँभाले रखें। कचरे के रहने में ही अगर बरकत है तो आसपड़ोस के घरों से भी कचरा लाकर अपने घर में रखें।

रात को तो- सोने से पहले-अवश्य ही घर में झाड़ू-फटका करना चाहिए और कचरा बाहर फैकने की व्यवस्था है तो अवश्य ही फैंकना चाहिए। साफ-सफाई से ही बरकत होती है (बरकत-समृद्धि)। लक्ष्मी का वास गंदगी में नहीं, अपितु जहाँ स्वच्छता होती है वहीं होता है।

क्या गंदे बिस्तर पर आप सोना पसंद करेंगे? क्या घर में भोजन के टुकड़े यहाँ-वहाँ बिखरे हों- मच्छर और कीड़े घूम रहे हों- वहाँ

thearyasamaj.org

विश्राम करना चाहेंगे?

घर में काकरोच घूम रहे हों- चूहे यहाँ से वहाँ कूद रहे हों- वहाँ क्या नींद आ सकती है? बीमारी का कारण है अस्च्छता। जिस घर में सफाई रहती है वहाँ रोग कम होते हैं। जिस जगह (घर में) हम अपने जीवन का सबसे अधिक समय बिताते हैं- विश्राम करते हैं, उस जगह की सफाई का ध्यान हमेशा रखना चाहिए। बड़े शहरों में तो रात्रि में ही नगर निगम के कर्मचारी सड़कों की सफाई करते हैं। क्या इससे उन शहरों की समृद्धि चली गई है? पश्चात्य देशों की सफाई तो देखते ही बनती है।

इस भ्रान्ति को कतई मस्तिष्क से हटा दें कि रात्रि के समय झाड़ू न मारें या सफाई न करें।

अंधविश्वास : 26 : प्रसाद को अवश्य ग्रहण करना चाहिए नहीं तो अशुभ ही होता है- ऐसा सत्यनारायण की कथा में कहा है!

निर्मूलन : जो बाँटा जाता है उसे प्रसाद कहते हैं- कृपा को भी प्रसाद कहते हैं।

सत्यनारायण की कथा में क्या कहा है उसे ध्यानपूर्वक समझना होगा, तभी बात का निर्णय किया जा सकता है। खाने-पीने की चीजें़ जैसे- हलवा-पूरी-मिठाई-सेवबूँदी-चाय इत्यादि- साधारण तौर पर इन्हीं को हम सभी प्रसाद कहते हैं और ग्रहण करते हैं। ये तो खाद्य पदार्थ हैं। जो प्रभु-भक्त प्रवचन सुनने मंदिर इत्यादि धर्म-स्थलों पर जाते है, वे प्रातः घर से निकलते हैं और वापस घर पहुँचने में दो-तीन घंटे हैं, अतः उनकी सुविधा हेतु कुछ प्रातरश की व्यवस्था इन धर्म-स्थानों पर संस्था के व्यवस्थापक करते हैं जिनके ग्रहण करके कुछ राहत-सी मिलती है। इसको साधारण तौर पर प्रसाद का नाम दिया गया है। लोग बड़े चाव से उसे ग्रहण करते हैं। इसे पवित्र माना जाता है और इसे लेकर लोग घर भी ले-जाया करते हैं और घर में बैठे सदस्यों को बाँटते हैं। इन खाद्य पदार्थों को धर्म से मिलाना-जोड़ना कोई मायने नहीं रखता। इस प्रातराश को ग्रहण करने या ना करने से काई हानि या अशुभ नहीं होता। किसी चिन्ता में या भूख के मारे चक्कर आए इसका तात्पर्य यह नहीं कि उस भक्त ने प्रसाद लेने से इन्कार किया था। यह भ्रान्ति है। किसी को मधुमेह रोग है, उसे मीठा खाना मना है और वह प्रसाद (प्रभु की कृपा) समझकर मीठा हलवा-पूरी खाता है तो और भी अधिक बीमार पड़ जाएगा। यहाँ तक कि हस्पताल में भर्ती होने तक की नौबत आ सकती है। अब इसे क्या कहेंगे? प्रसाद ही हानिकारक हो गया ना?

सत्यनारायण की पौराणिक कथा में इस बात को महत्त्व दिया गया है कि आधी कथा के बीच में (प्रवचन को अधूरा सुने) उठकर चले जाना अनुचित है। इससे हानि न सुनने वालो को,

thearyasamaj.org

निजी रूप से हो सकती है क्योंकि उसने प्रवचन अधूरा सुना था, पूरा ज्ञान ग्रहण नहीं कर पाया। इससे धन-दौलत की हानि होगी या किनारे पर लगी नाव डूब जायेगी या फिर प्रसाद खाने से वही डूबी हुई नाव वापस तैर जाएगी और सब सामान सही-सलामत हो जाएगा- यह तो संभव नहीं है। पानी में डूब गया सामान तो नष्ट होगा ही- बिखर भी जाएगा। नाव सीधी होगी तो सामान वापस वैसे ही पहलेवाली स्थिति में हो जाना- यह तो नामुमकिन है। इस पर कोई बुद्धिजीवी विश्वास नहीं कर सकता। प्रसाद खाने न खाने से नाव डूबना या फिर तैर जाना- अंधविश्वास के सिवा कुछ भी नहीं।

ज़रा-सा सोचिये-विचारिये और सत्य के ग्रहण करने का साहस करिये। सत्यनारायण की कथा की पुस्तक किसने लिखी है? सत्यनारायण क्या है? कौन है? जो कथा नहीं सुनता उसकी हानि होगी, जो इस कथा को सुनता है उसका भला होगा- व्रत क्या है इसको समझना होगा। सत्यनारायण का व्रत धारण करने का स्पष्ट अर्थ है सत्यरूप परमात्मा के नियमों को स्वीकारने का व्रत लेना। इन शंकाओं का जब तक समाधान नहीं होता, तब तक अंधश्रद्धा-अंधविश्वास के कारण केवल हानि ही होती है। इसके लिए 'शंका-समाधान' नामक पुस्तक को पढ़ें औरों को भी पढ़ाएँ। सत्यनारायण व्रत के बारे में ठीक-ठीक जानकारी के लिए और भी अनेक शंकाओं के समाधान के लिए वैदिक प्रमाणों से सुशोभित 'शंका-समधान' को घर में रखें और उसका स्वाध्याय करें।

अंधविश्वास : 27 : शिवलिंग की पूजा से सब-कुछ होता है अर्थात् शिवलिंग के ऊपर पानी चढ़ाने से शिवजी प्रसन्न होते हैं।

निर्मूलन : मुझे लग रहा था कि शिवलिंग के बारे में कभी न कभी शंका अवश्य उत्पन्न होगी। और सच भी है- जहाँ शंका उत्पन्न हो उसका समाधान होना ही चाहिए और जहाँ भ्रान्ति हो उसका निवारण अवश्य होना ही चाहिए। बहुत खोज करने के पश्चात् मालूम हुआ है कि समाज के कुछ लोगों ने अपने कुकर्मों को छुपाने के लिए अपनी करतूतें भगवानों पर लाद दी हैं और साधारण लोग उसी को सच समझकर मान लेते हैं। नतीजा यह कि अंधविश्वास और अन्धश्रद्धा का वातावरण छा जाता है और दिन-ब-दिन लोग अधिक दु:खी होते रहते हैं।

जो शिवलिंग की कहानी प्रचलित हो चुकी है, सभी विद्वज्जन जानते हैं कि वह काल्पनिक है, उसमें कोई सचाई नहीं है।

जब यज्ञकर्म होता है तो वहाँ पहले यजमान दीया जलाते है, अग्नि प्रज्वलित करते हैं और मंत्रपाठ द्वारा अग्नि को यज्ञकुंड में स्थापित करते हैं। तब आगे की प्रक्रिया जारी रहती है।

thearyasamaj.org

दीपक जलने में तीन वस्तुएँ मुख्य होती हैं- (1) दीपक, (2) बाती, और (3) शुद्ध घी। जब दीपक में घी होता है तब ही बाती जलती है। प्रज्वलित दीपक अंधकार को भगाता है। जब जोरदार हवा चलती है तो दीपक बुझ जाता है। परन्तु जहाँ हवा का रुख धीमा होता है, ना के बराबर होता है, दीपक उसी स्थान पर लम्बे काल तक बिना विचलित हुए सीधी लौ में जलता रहता है। यही स्थिति योग-साधना में योगी की समाधि-अवस्था में होती है। इस स्थिति को सबसे उत्तम बताया जाता है क्योंकि बाहरी विषयों का निरोध होता है।

जलते हुए दीपक की स्थिति बहुत लुभावनी होती है, सबको अच्छी लगती है और यहीं से पूजा आरम्भ होती है। दीपक की लौ को हिलता-डुलता न देखकर मन भी बिना विचलित हुए स्थित होने लगता है। बस यही शिवलिंग भूमिका है।

कालान्तर में इस एकाग्र स्थिति को समझाने के लिए लोगों ने पत्थर का दीपक बनाकर उसमें पत्थर की ही बनी जीत सीधी रख दी और दीये का स्वरूप बनाकर जहाँ चाहा वहाँ रखकर पूजा-पाठ करना आरम्भ कर दिया। यहीं से शिवलिंग की पूजा का प्रचलन हुआ। आज तक यही परम्परा कहिये या लोगों की अज्ञानता कहिये, चलती आ रही है।

इस प्रचलन को वाममार्गी लोगों ने बहुत ही विकृत रूप दे दिया। वाममार्गी वे लोग हैं जो गुप्तेन्द्रियों की पूजा करते हैं। किसी की भी स्त्री या किसी का भी पति, यहाँ तक कि वे अपने ही घर में सदस्यों को ही प्राथमिकता देते हैं इसमें कोई पाप नहीं समझते-इसी को वे धर्म कहते हैं। इस प्रकार के लोगों ने ही पवित्र दीपक के इस स्वरूप को 'शिवलिंग' के नाम से प्रसिद्ध किया और शिव-पार्वती की कहानी का निर्माण किया। अपनी सब बुरी से बुरी भावनाएँ शिव-पार्वती की पौराणिक कहानी से जोड़ दीं। लौ को शिवलिंग का रूप दिया गया और दीये को पार्वती की योनि। कितनी शर्म की बात है। कहते हैं कि शिवलिंग (शिवजी के गुप्तअंग) को ठंडा करते रहने के लिए शिवलिंग के ऊपर कलश (जलहरी) से दूध की बूँदें टपकाते रहते हैं और ऐसा मानते हैं कि इससे शिवजी प्रसन्न होते हैं, सन्तुष्ट रहते हैं। ऐसी कथा शिवपुराण में आती है। विस्तार में जानने के लिए स्वयं शिवपुराण पढ़ें।

अज्ञानता के कारण-स्वाध्याय की कमी के कारण, कालान्तर में शिवलिंग के मंदिर बन गए जहाँ अंधश्रद्धालु, पापी और अंधविश्वासी लोग अपने घर से दूध-पानी ले जाते हैं और शिवलिंग पर चढ़ाते हैं। उन्हें स्वयं भी मालूम नहीं कि वे क्या कर रहे हैं। देखा-देखी में

thearyasamaj.org

भेड़-बकरियों की भाँति चले जा रहे हैं- लक्ष्य क्या है, कुछ मालूम नहीं।

वास्तव में 'शिव' ईश्वर का ही गौणिक नाम है, क्योंकि वह कल्याणकारी है। शिव का अर्थ है कल्याण करनेवाला। शंकर भी उसी परमात्मा का नाम है क्योंकि 'शम्+करोति इति शंकरः' अर्थात् सबका भला करता है। शंभु भी वही है क्योंकि ईवर कल्याणकारी है और अपनी संतानों (आत्माओं) का कल्याण ही चाहता है। पार्वती, शिव की शक्ति का नाम है। शक्ति-प्राकृतिक नियम।

शिव-पार्वती की पूजा अर्थात् परा और अपरा विद्या को जाने बिना जीव को मुक्ति नहीं मिल सकती। इहलोक और परलोग की जानकारी के बिना मोक्ष नहीं होता। शिवपार्वती की सही पूजा यही है कि वेदाध्ययन करें- ज्ञान प्राप्त करें- पवित्र आचरण करें और मोक्ष को प्राप्त करें।

चेतन और जड़ के भेद को समझना और उसी प्रकार उनका प्रयोग करना शिव और शक्ति के सही स्वरूप को जानना है। भौतिक ज्ञान को अपरा विद्या कहते हैं और चेतन (ब्रह्म और जीव) के ज्ञान को परा विद्या (आध्यात्मिक ज्ञान) कहते हैं।

अंधविश्वास : 28 : जिन महात्माओं के नाम से पहले 'श्री श्री 108 श्री' लिखते हैं वे ईश्वर के अधिक निकट और पहुँचे हुए संत होते हैं।

निर्मूलन : कई लोग ऐसा मानते हैं कि इस शरीर में 107 नाड़ियों हृदय से जुड़ी हुई हैं (ऐसा हमारे उपनिषद् कहते हैं) जिनके द्वारा योग की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। जो योगी पुरुष इनको सिद्ध करता है उसके साथ यह 108 बन जाता है- 107+1=108 । किन्तु यह एक भ्रान्ति ही है। एक दूसरा भी पहलू है। 108 में तीन वस्तुएँ हौं- 1+0+8, इनमें 1 ईश्वर का प्रतीक है अर्थात् ईश्वर एक है। 0 प्रकृतिक को दर्शाता है जो जड़ है, जिसका महत्त्व ईश्वर और जीव के साथ ही होता है, वह प्रभु से मिलन करती है। जो व्यक्ति ईश्वर, प्रकृति और आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है अर्थात् इन तीनों तत्त्वों को जान लेता है, उसे सिद्ध पुरूष कहते हैं या उसके नाम के आगे 108 लिखते हैं।

यहाँ भी बहुत महत्त्वपूर्ण दर्शन हैं- जीव (8) को परमपिता परमात्मा से मिलन के लिए प्रकृति है। आत्मा जब प्रकृति को शून्य समझता है, तभी परमपिता परमेश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। अगर वह अपने-आप में ही अभिमान करता रहेगा और जड़ प्रकृति में ही उलझा रहेगा तो वह (8) नीचे की ओर गिरता रहता है। परंतु ईश्वर के संग में वह 8+1=9 बन जाता है जो पूर्ण अंक है। 9 नं पूर्णता का प्रतीक है, बाकी सब अंक 9 के नीचे ही होते हैं। 1 और 9 के

thearyasamaj.org

भीतर ही सब अंक होते है। जो व्यक्ति इनके रहस्य को नहीं समझाना/जानता, वह शून्य (0) की भाँति जड़ बुद्धिवाला हो जाता है, अत: अपने अस्तित्व का महत्व समझकर हमें भी पूर्णता की ओर बढ़कर, ईश्वर में रहकर, ईश्वर की भाँति आनन्दित होना है। जिन अंकों का जोड़ 9 होता है उनमें यह खूबी है कि इनको घटाने से बाकी 9 ही रहता है, जैसे-

54-45=9, 63-45=18=1+8=9 इत्यादि। इसी भावना को जाग्रत रखने के लिए माला में भी 108 दाने होते है। 108 नंबर सदा सचेत करता रहता है कि यदि ईश्वर से नाता जोड़ना है- पूर्ण बनना है- आनन्दित रहना है तो जड़ पदार्थ को बीच में से हटा दो। 1 और 8 चेतन हैं और 0 जड़ है।

जो व्यक्ति अपने घमंड में रहता है उसका दर्जा कैसे कम होता है, निम्नलिखित आँकड़ों से समझ सकते हैं।

8x2=16=1+6=7
8x3=24=2+4=6
8x4=32=3+2=5

इस प्रकार विद्वज्जन देख सकते हैं जैसे-जैसे मायामेह में फँसते रहेंगे- ईश्वर की नज़रों से गिरते रहेंगे। परमेश्वर ने हममें (नं0- 8 को) योग्यता प्रदान कर रखी है कि हम अगर अपने-आपको पहचानने का प्रयास करें तो ईश्वर से मिल सकते हैं क्योंकि परमात्मा भी हममें बसता है। वह सर्वव्यापक है- प्रकृति में भी; परन्तु प्रकृति जड़ है, हम चेतन हैं। चेतन (परमात्मा) का दर्शन चेतन (जीवात्मा) ही कर सकता है। जैसे-जैसे योग के अंगों को जानने का प्रयास करते रहेंगे-इसका दर्शन साफ होता जाएगा। वैराग्य और अभ्यास से सब संभव हो सकता है। यही 108 नम्बर का दर्शन है।

अंधविश्वास : 29 : वास्तु-शास्त्रज्ञ कहते हैं कि घर में शुद्ध घी का दीपक केवल दिवाली या नवरात्रों में ही जलाना चाहिए, दूसरे दिनों में जलाने से गृहलक्ष्मी और धन नष्ट हो जाता है। मंदिरों में शुद्ध घी की ज्योति जलाई जा सकती है, घर में नहीं।

निर्मूलन : लगता है जिसने भी ऐसा कहा है उनके घर में कुछ अशुभ हो गया होगा। घर में आग लग गई होगी, गृहलक्ष्मी (धर्मपत्नी) और धनलक्ष्मी जल गई होंगी।

वास्तव में दीपक तो सच्चे घी (शुद्ध घी) का ही जलाना चाहिए, वरना दीपक जलाने से केवल प्रकाश का लाभ होगा। धर्मानुसार जब भी यज्ञकर्म से पहले दीपक की ज्योति प्रज्वलित करते हैं तो वह दीपक सच्चे घी का ही जलाया जाता है गृहणियाँ संध्या के समय शुद्ध घी का ही दीपक जलाती हैं जो रोगनाशक तथा मन को स्थिर करने का प्रतीक होता है।

घासलेट आदि का दीपक नहीं जलता।

thearyasamaj.org

लालटेन जलने पर केवल रोशनी प्रदान करती है, परन्तु दीया तो शुद्ध देसी घी का ही जलना चाहिए। इससे घर में सुख-समृद्धि बढ़ती है; घटती नहीं, जलती नहीं। व्यर्थ के भ्रम को अपने मन-मस्तिष्क से निकाल देना चाहिए। आप स्वयं चिन्तन करेंगे तो भ्रान्तियों के अँधेरे स्वतः छँटने लगेंगे। अपनी बुद्धि का प्रयोग करे; केवल कहे-सुने का कभी विश्वास न करें। सत्य को जानें और जो असत्य-भ्रान्ति-संशय-शक या शंका है उसको ज्ञान-विज्ञान की कसौटी पर परखें। थोथे रिवाजों और परम्पराओं की नकल न करें। ईश्वर आपके देसी घी का भूखा नहीं है। उसके लिए सच्ची श्रद्धा और निश्छल अनुरक्ति ही देसी घी है। घी से शरीर और वातावरण में पुष्टि और सुगन्धि फैलाइये। आत्मा और परमात्मा का मन्दिर तो हमारे शरीर हैं, इन्हीं को घी से पुष्ट और सुवासित कीजिए।

देव-मंदिरों में तो सच्चे देसी घी के दीये जलते ही हैं- बहुत अच्छी बात हैं। यह भी सोचिये कि क्या घर मंदिर नहीं होता? क्या घर में मंदिर बनाया नहीं जा सकता? मंदिर कहते हैं जहाँ मनन किया जाए, अर्थात् हमारा मन ही मंदिर है जहाँ परमप्रिय परमात्मा का मनन-चिन्तन होता है। घर में आपका उपासना-स्थल मंदिर ही तो है। बाहर जाने की आवश्यकता भी क्या है? जहाँ शुद्धता है वहीं मंदिर है। यह शरीर तो सबसे बड़ा मंदिर है जिसमें हर वक्त हर क्षण ज्ञानरूपी दीपक जलाया जाता है। यह ज्ञानरूपी दीपक प्रेम और श्रद्धारूपी घी से जलता है- बाती 'ओ३म्' की होती है। इस आध्यात्मिक दीपक को जलानेवाला 'आत्मा' है। लक्ष्य 'परमपिता परमात्मा' से मिलन है।

हम वास्तु-शास्त्रज्ञों से प्रश्न करना चाहते हैं-

(1) क्या दीपक केवल नवरात्र या दिवाली के दिन ही जलाना चाहिए?

(2) भौतिक दीपक तो प्रकाश का प्रतीक है। आपने आध्यात्मिक दीपक का नाम सुना है कि नहीं- उसके बारे में क्या राय है?

(3) दीपक सच्चे देसी घी का ही जलता है। है ना? नहीं तो किस द्रव्य का जलाना चाहिए?

(4) दीपावली में आजकल दीपक नहीं, रंगीली बत्तियाँ जलती हैं तो क्या इन लोगों को दिवाली मनानी नहीं आती?

(5) कौन-से वास्तु-शास्त्र में लिखा है कि धीमी ज्योत नहीं जलानी चाहिए, वह भी केवल नवरात्र या दिवाली के उपलक्ष्य में?

प्रिय पाठको। सत्य को ग्रहण करो। गृहणियाँ अपनी सुविधानुसार घर में कौन-सी चीज कहाँ रखनी हैं, उसी को ध्यान में रखकर, अपनी वस्तुओं को व्यवस्थित रखें। वास्तुशास्त्र के अनुसार भवन-निर्माण में तर्कसंगत बातों को तो सोचा जा सकता है, किन्तु व्यर्थ की भ्रान्तियाँ

thearyasamaj.org

में न पड़ें। सब सदस्यों की राय लेकर उनके पलँग-सोफा-कब्बाट इत्यादि फर्नीचर को रखें और सजाएँ। यही वास्तु-विद्या है। वास्तुशास्त्रज्ञों के हाथ लगेंगे तो केवल कोई सलाह देंगे परन्तु आपकी जेब खाली कर देंगे। व्यर्थ के ढकोंसलों से बचें।

अंधविश्वास : 30 : दक्षिणमुखी द्वार या दक्षिण से अथवा वाम से प्रकाश आने पर घर में अनर्थ होता है, गृहलक्ष्मी और धनलक्ष्मी नष्ट होती है।

निर्मूलन : केवल वायु या प्रकाश के पड़ने से गृहलक्ष्मी या धनलक्ष्मी नष्ट हो जाना तो नासमझी की बातें हैं। वायु और प्रकाश शरीर के लिए उतने ही लाभकारी हैं जितना भोजन और जल। घर के भीतर वायु दक्षिण से आवे या पश्चिम से- उससे गृहलक्ष्मी अर्थात् धर्मपत्नी का नष्ट होना कैसे संभव है? दक्षिण की हवाओं से पति और बच्चे बच जाएँगे और बेचारी धर्मपत्नी मर जाएगी- यह तो अचम्भेवाली बात है। इस भ्रान्ति में सार की बात इतनी-सी है कि पूर्व की वायु शीतल होती है और मीठी फुहारें लाती है, पश्चिम की वायु रूखी और बादल उड़ा देता है, दक्षिण की वायु गर्म होती है और उतर की हवा बर्फीला असर करती है। चूँकि पत्नी को निरन्तर घर में रहना होता है, अत: वह रुग्ण होकर मर भी सकती है। यदि पति पित्त प्रकृति का है तो उसके लिए कमाएगा कौन? गृहलक्ष्मी और धनलक्ष्मी और दानलक्ष्मी के विनाश की यही संभावना है। कूलर या वातानुकूलित का प्रबंध होने पर दक्षिण की हवा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी। शुद्ध-पवित्र-सुगंधित वायु का आवागमन किसी भी दिशा से हो-लाभकारी ही होता है। जिस दिशा से वायु घर के भीतर आती है वहाँ शयनकक्ष बनाना उचित है। जहाँ वायु और प्रकाश घर में आता है वहाँ पर रसोईघर रखना चाहिए। महानगरों में तो मकान मिलना ही कठिन है। वास्तुशास्त्र पर कौन अमल करे? जिनको ईश्वर में भरोसा होता है-अपने-आप में विश्वास होता है तथा अपने कर्मों में अकीदा होता है, उनको हर हाल में खुशहाली मिलती हैं- वे हर हाल में सुख-समृद्धि को प्राप्त करते हैं। वे इन वहमों में नहीं पड़ते। ये फ़िज़ूल की बातें हैं- गुमराह करनेवाली बातें हैं। सूर्य के प्रकाश से रोग नष्ट होते हैं, दूषित वातावरण शुद्ध होता है। वायु के आवागमन से घर में अनेक प्रकार के विषाणु भाग जाते हैं, फिर इन वास्तुशास्त्रज्ञों को इन वायु और प्रकाश से कैसी दुश्मनी है, ईश्वर ही जाने। हाँ, यह सम्भव है कि ऐसी उल्टी-सीधी बातें बताकर वे भोले-भाले लोगों के दिलों में भय उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं और बाद में उसका निदान बताते हैं और अपनी फीस (मजदूरी) लेते हैं। वास्तुशास्त्र के नाम पर लोगों को ठगना भी एक प्रकार का धंधा हो गया है। इनसे सावधान् इनके चक्कर में ही गृहलक्ष्मी और धनलक्ष्मी दोनों हाथ से फिसल सकती है।

● **शेष अगले अंक में....**

thearyasamaj.org

नामकरण संस्कार का महत्व

(पंडित वेद प्रकाश शास्त्री, 4-E, कैलाशनगर, फाजिलका, पंजाब

<u>**नामकरण का काल**</u>- शास्त्रों के अनुसार ग्यारहवें दिन नाम रखना चाहिए। यदि किसी कारणवश उस दिन न हो सके तो 101वें दिन करें।

<u>**नामकरण का महत्व**</u>- मानव-जीवन में नामकरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। संसार में जितनी भी वस्तुएं हैं चाहे वे जड़ हो या चेतन, उनका कोई न कोई नाम अवश्य है। यदि उनका नामकरण न किया जाय तो उन्हें संबोधित ही नहीं किया जा सकता। जिन नई वस्तुओं का अविष्कार होता है या बनती हैं, पहले उनका नामकरण ही किया जाता है, जिससे उन्हें उस नाम से सम्बोधित किया जा सके। एक दूसरे से भिन्नता प्रकट करने एवं व्यवहार में लाने के लिए वस्तु, स्थान, व्यक्ति, जीव-जन्तु आदि का नामकरण अत्यावश्यक है। महर्षि पतज्जलि कहते हैं-

व्यवहारार्थ संज्ञाकरणं लोके ।

नामकरण संसार में व्यवहार अर्थात् बुलाने के लिए होता है। जब हम किसी से मिलते हैं तो सबसे पहला हमारा प्रश्न यही होता है कि आपका नाम क्या है? सभी धर्म, जाति, सम्प्रदाय एवं विभिन्न विचारधाराओं वाले व्यक्तियों में।

आज कल बच्चे के जन्म के पश्चात् उसका पंजीकरण नगर पालिका/ ग्राम पंचायत में निश्चित समय के अन्तर्गत कराना अनिवार्य है। अतः शिशु एवं माता के स्वस्थ होने पर नामकरण ग्यारहवें दिन सर्वाधिक उपयुक्त है। यदि चिकित्सीय असमर्थता हो तो 21, 31 दिन बाद भी कर सकते हैं। इसमें कोई दोष नहीं। अन्धविश्वास में न पड़े। सरकारी/प्राईवेट अस्पताल भी बच्चे का प्रमाण पत्र देते है परन्तु बच्चे का नाम उसी समय लिखते हैं। अतः बच्चे के जन्म के पश्चात् सार्थक, सरल, सुन्दर नाम का चयन कर लें और उसे ही अस्पताल। ग्राम पंचायत/ नगर पालिका में दर्ज करवायें। यही नाम स्कूल में भी प्रविष्ट कराएं। कई व्यक्ति कुण्डली के आधार पर नामकरण करते हैं, पंडित से पूछते हैं। ऐसे सज्जनों से निवेदन है कि अनेक बार कुण्डली का नामाक्षर ठीक नहीं निकलता, नामकरण संस्कार अवश्य प्रचलित है। हां, नामकरण की विधि, पद्धति, प्रथा, रीति रिवाज में भले ही अन्तर हो परन्तु इतना निश्चित है कि नामकरण सभी व्यक्ति अवश्य करते हैं क्योंकि इसके बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता कोई अपनी प्रचलित परम्परा के अनुसार करता है और कोई वैसे ही मौखिक रूप से अपनी पसन्द के अनुसार पुकारने लगता है।

<u>**नामकरण की सार्थकता**</u>- महर्षि दयानन्द ने 'संस्कार विधि' में लिखा है कि बालक-बालिकाओं के नाम सार्थक, सरल,

thearyasamaj.org

सरस, कोमल और सुस्पष्ट होने चाहिए।

जब हमें बच्चे का नाम रखना ही है तो ऐसा नाम क्यों न रखें जो सार्थक हो, अर्थ ठीक निकले, सरलता से पुकारा जा सके, सुनने में सरस और कोमल हो। पुकारते ही नाम का अर्थ भी समझ में आ जाय तभी नामकरण की सार्थकता है।

केवल अपनी पसन्द और रूचि को ही महत्व नहीं दने चाहिए अपितु साथ में यह भी देखें कि नाम का कोई उपयुक्त अर्थ भी निकलता है या नहीं ?

कई बार नाम तो सार्थक होता है परन्तु होता बेमेल है। यथा- पार्थ। पृथा का पुत्र अर्जुन। अन्य कोई भी व्यक्ति पार्थ नाम नहीं रख सकता क्योंकि उसकी माता का नाम पृथा नहीं होगा तब वह पार्थ कहलाने का अधिकारी कैसे बन गया? अत: 'पार्थ' नाम सार्थक होते हुए भी हर एक के लिए भ्नाम रखना उचित नहीं है। राघव भी ऐसा ही शब्द है जो रघुवंश में पैदा हुआ हो, वह राघव कहला सकता है। श्री कृष्ण यादव थे क्योंकि वह यदुवंश में जन्मे थे परन्तु यादव नाम कोई भी नहीं रखता क्योंकि आजकल 'यादव' शब्द जाति सूचक बन गया है जबकि 'राघव' शब्द नहीं बन सका।

नाम के उच्चारण में सौम्यता भी प्रकट होनी चाहिए, कर्कशता, क्रूरता नहीं। यथा- चण्डी या चण्डिका, जालिम सिंह या शैतान सिंह।

नाम सोद्देश्य होना चाहिए। जैसे- यदि हम चाहते है कि बच्चा नम्र बने तो उसका नाम 'विनीत' रखे, सुशील नामकरण करें।

<u>यथा नाम तथा गुण</u>- सामान्यत: व्यक्ति की यही कामना रहती है कि जैसा बच्चे का नाम रखा गया है उसमें वैसा ही गुण भी हो परन्तु यह तो भविष्य की बात है कि बच्चे में नाम के अनुसार ही गुण आते भी हैं या नहीं। नाम के विपरीत भी गुण आ सकते हैं। यथा- किसी बच्चे का नाम रखा गया- 'विद्या सागर' लेकिन वह निकल गया 'काला अक्षर भैंस बराबर'। विवशत: अब कुछ किया भी नहीं जा सकता। उसे विद्वान् बनाना कष्ट साध्य ही नहीं असम्भव भी है। नाम भी नहीं बदला जा सकता। अब यह अच्छा भला नाम छोड़ कर गुणहीनता सूचक नाम भी कैसे रखा जाय? ऐसा करना और भी हास्यास्पद होगा। अत: जैसा नाम रखा गया है, वही चलने दिया जाय।

नाम के अनुसार गुण न भी आएं तो भी अच्छे नाम ही रखने चाहिए। यदि नाम के अनुसार गुण नहीं हैं तो क्या हुआ।

अन्य अच्छे गुण भी हो सकते हैं। सभी गुणों के आधार पर तो नाम नहीं रखे जा सकते। नाम एक ही होता है और गुण अनेक होते हैं।

कबीर अनपढ़ थे फिर भी उनका काव्य पठनीय है। अनेक तर्कों के द्वारा उन्होंने अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, पाखण्ड, आडम्बर, हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य, जातिगत वर्णव्यवस्था

thearyasamaj.org

आदि कुरीतियों का खण्डन किया।

कई राजे-महराजे भी अशिक्षित थे परन्तु राजनीति में अत्यन्त कुशल थे और अपनी कर्त्तव्यपरायणता से उन्होंने जनमानस पर अपनी धाक जमा दी।

इस प्रकार पुस्तकीय विद्या न होने पर भी उन्हें बुद्धिमान चतुर और कार्यकुशल तो मानना ही पड़ेगा।

निष्कर्ष रूप में हम यही कह सकते हैं कि बच्चों के नाम सुन्दर, सरल और सुबोध होने चाहिए। बुरे नाम पहले से ही क्यों रखें?

विदेशी संस्कृति का प्रभाव- आज विदेशी सभ्यता-संस्कृति के प्रभाव से जीवन का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा है। अतः बालक बालिकाओं के नाम भला कैसे अप्रभावित रहते? नवीनता आधुनिकता की चकाचौंध और अन्य लोगों से कुछ विशेष प्रदर्शित करने के चक्कर में फंस कर कई लोग ऐसे नाम रख लेते हैं जो सुनने में आकर्षक प्रतीत होते हैं। परन्तु उनका कोई अर्थ नहीं निकलता या ऐसा अर्थ निकलता है जिसे सुनकर हंसी आती है या आश्चर्य होता है। साथ ही नामकरण करने वाले की अज्ञानता भी प्रकट होती है। यथा- टीना, पैंसी, पिंकी, साहिल, आरिफ, महक, टार्जन, रिंकू, टिंकू, पिंकू, सोनू, मोनू, विंकल, मोनिका, सोनिया, किट्टी, डेजी, नानू, मिनाली, सोनाली, सुहेल, कबीर, किशमिता, अशमिता, तमन्ना, चाहत, लवलीन, शीनू, शकील आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। पास पड़ोस में देखने पर ऐसे अनेक नाम मिल जायेंगे जिन पर पश्चिमी अथवा इस्लामिक सभ्यता का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। ऐसे नाम रखने में लोग गौरव का अनुभव करते हैं। वस्तुतः अपनी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिए ऐसे नाम रखने से हमें संकोच करना चाहिए।

निरर्थक नामों का त्याग - महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व बच्चों का नाम कोई न कोई रखना ही होता था, इस लिए रख लेते थे। क्योंकि इसके बिना उसे पुकारा नहीं जा सकता था। यथा- झंडा राम, गंडा राम, आयार म, गया राम, कोदई, बेचन, पंजा सिंह, झूले लाल, मिठाई लाल, शादी लाल, गोबरे, मंगा सिंह, तोता सिंह, अंग्रेज सिंह, जट्टू राम, दुखी राम, दुखन लाल, भीखा भाई, भिखारी दास, रेलू राम, पल्टूदास, कालू सिंह, पोपट लाल, आदि।

और महिलाओं के - पारोबाई, सत्तोबाई, झुरिया, भीमा, हुक्मी, रक्खो, सुग्गी, धनिया, हिरिया, सन्तो, जट्टूबाई, धनू देवी, मंगलो, परोसिना, बीरमा देवी, जीरो, पन्दो, छिना, सरदरो, सुन्ता रानी, नीलो, जैसे नाम रखना उस समय आम बात थी। ग्रामीण क्षेत्रों, पिछड़ा वर्ग और अशिक्षित जगहों में आज भी ऐसे ही नाम रखे जाते हैं।

अज्ञानतावश निरर्थक या अस्वाभाविक नाम रखने का भी अत्यधिक प्रचलन है जिसके

thearyasamaj.org

बारे में कोई सोच विचार नहीं करते। यथा- बच्ची का नाम रखा- परिणीता। वस्तुतः इसका अर्थ है विवाहिता। जरा सोचिए, क्या जन्मते ही बच्ची विवाहित हो गई अथा विवाहिता ही जन्मी? बच्चे का नाम रखा- अक्षर। इसका अथ है- कमजोर। क्या परिवार कमजोर बच्चा चाहते हैं, स्वस्थ नहीं? वस्तुतः ऐसे नामों की उपेक्षा की जानी चाहिए।

1. नामकरण के समय सावधानियाँ-

नामकरण करते हुए सचेत रहें कि जो नाम रख रहे हैं, वह पूर्ण या आंशिक रूप से बालक-बालिका के अनुकूल भी हो। यथा- बच्चे का नाम रखा- नन्हा, नन्हें। अर्थ है- छोटा। क्या बच्चा छोटा ही रहेगा, बड़ा न होगा? और जब बड़ा हो गया तो 'नन्हा' नहीं रहा। फिर भी लोग 'नन्हें' कहकर अनेक बार उपहास भी करेंगे। 'छोटूराम, छोटे लाल' भी ऐसे ही नाम हैं। तभी तो 'काका हाथरसी' कहते हैं-

नाम रूप से भेद पर कभी किया है गौर।
नाम मिला कुछ और तो शक्ल अक्ल कुछ और॥
'काका' छः फुट लम्बे छोटू राम बनाए।
नाम दिगम्बर सिंह वस्त्र ग्यारह लटकाए॥

2. महापुरूषों - देवी-देवताओं के नाम पर नामकरण करते समय पिता-पुत्र, माता-पुत्री, बहन-भाई आदि के नामों के सम्बन्धों का भी ध्यान रखें। कहीं ऐसे असंगत नाम नाम न रखें जायं, जिस पर लोग व्यंग्य करें। काका हाथरसी के शब्दों में

कौशल्या के पुत्र का रखा दशरथ नाम।
'काका' कोई कोई रिश्ता बड़ा निकम्मा।
पार्वती देवी है शिवशंकर की अम्मा।

यदि मां का नाम 'कौशल्या' है तो पुत्र का नाम 'दशरथ' न रखें। दशरथ-कौशल्या पति-पत्नी थे, पर यहां मां-बेटे बन गए। इसी प्रकार मां का नाम 'पार्वती' है तो पुत्र का नामकरण 'शिवशंकर' करना कहां की बुद्धिमत्ता है? 'कमला-शंकर' या 'रमा शंकर' नामकरण में भी कोई औचित्य नहीं। क्योंकि कमला, रमा (लक्ष्मी) विष्णु की पत्नी का नाम है और 'शंकर' शिव का। अतः कमलाशंकर, रमाशंकर इन दोनों नामों के योग में कोई साम्य नहीं।

3. कई बार संयुक्त नाम में एक शब्द तो सार्थक और सुन्दर होता है तो दूसरा सार्थक होते हुए भी भद्दा और हीनता सूचक। यथा- पीयूष पाचक। पीयूष का अर्थ है- अमृत और पाचक का रसोइया या पकाने वाला। भला इन दोनों शब्दों में क्या मेल?

अन्य शब्द है - चन्दनमल या सागरमल। इनमें चन्दन और सागर शब्द तो ठीक है परन्तु 'मल'- मैला या मलिनता का सूचक है।

कहते है, महर्षि दयानन्द के पास एक व्यक्ति कुछ जिज्ञासा लेकर आया। महर्षि ने उसका नाम पूछा। उस व्यक्ति ने कुछ संकोच

thearyasamaj.org

के साथ उत्तर दिया। 'महाराज' मुझे कूड़ामल कहते हैं। महर्षि ने भी मनोरंजक उपहास करते हुए कहा - 'क्यों भाई, कूड़े में कुछ कमी थी जो उस पर मल रख दिया।

कितनी करारी चोट की है महर्षि ने कुत्सित नामार्थ पर? अतः हमें ऐसे कुत्सितार्थक-अर्ध-कुत्सितार्थक नामों से बचना चाहिए। नामकरण से पूर्व शब्दों के अर्थ अवश्य विचार लेना चाहिए।

कारण? देखिए - बच्चे का नामकरण किया-तनुज। तनुज का अर्थ पुत्र है। क्या तनुज सभी के लिए पुत्र है? नहीं न? सम्बन्धों के आधार पर भाई, चाचा, ताया, मामा कुछ भी हो सकता है। क्या पत्नी भी उसे तनुज-पुत्र समझेगी? माता-पिता के लिए तो तनुज-पुत्र है, शेष के लिए नहीं। 'तनुज' बेटी शब्द की भी यही स्थिति है।

'अनुज' का अर्थ छोटा भाई है। अनुज भी तो सभी के लिए छोटा नहीं होगा न? अपने से छोटे भाई के लिए तो अग्रज ही रहेगा। पत्नी भी उसे अनुज-छोटा भाई नहीं समझेगी। अनुजा-छोटी बहन शब्द का भी ध्यान रखें।

4. जन्म स्थान किसी मन्नत-स्थान के आधार पर अथवा बिना विचारे ही किसी स्थान के नाम पर किया जाने वाला नामक रण- मथुनादास, काशीराम, अयोध्या प्रसाद, ब्रज बिहारी, मैथिलीशरण, पिंडी दास, लाहौरी राम, पिशोरी लाल, अजमेर सिंह, कश्मीरी लाल आदि नामकरण में कोई औचित्य नहीं।

5. जन्मदिन के आधार पर- मंगल को जन्मा मंगल सिंह, मंगलू, मंगलदेव, हनुमान, बुध को जन्मा बुध राम, बुच सिंह आदि- यह भी अन्धविश्वास पर आधारित है।

6. कई बार अभिभावक इसलिए भी बच्चे का भद्दा, निरर्थक नाम रख लेते हैं कि कहीं बच्चे को नजर न लगे, कुछ अशुभ न घटित हो। यथा- मंगनी राम मर जाणा=मर दा ना = मरदाना, गौरवर्ण को काला कहना आदि। यह भी अज्ञानता और अन्धविश्वास ही समझना चाहिए। इस धारणा में कोई तथ्यपूर्ण औचित्य नहीं। क्योंकि शुभ-अशुभ घटित होने में नाम का कोई आचार या कारण नहीं होता। अतः अच्छे, सार्थक नाम ही रखें।

7. कई बार प्रगतिशीलता, नवीनता या दूसरों से भिन्नता प्रकट करने के लिए कुछ अजीब सा रिवाज चल पड़ता है। जैसे आजकल नामकरण करने लगे हैं। - शिवम्, सत्यम् , शुभम्, मंगलम्। वस्तुतः यह शब्द संस्कृत के हैं और नपुंसक लिंग में हैं। जबकि बच्चा पुरूष (पुलिंग) है। फिर पुरूष (पुलिंग) को नपुंसक क्यों बनाया जा रहा है, समझ में नहीं आता। बस, यही कहा जा सकता है कि यह सब अज्ञानवश और बिना सोचे समझे हो रहा है। शिक्षित जन भी उतनी ही त्रुटि कर रहे हैं जितनी कि अशिक्षितजन। इस ओर किसी का ध्यान जाता ही नहीं। पुरोहित-पण्डित वर्ग भी इस पर विचार नहीं करता। आर्यों में भी ऐसे नामों को प्रचलन होता जा रहा है।

thearyasamaj.org

वैसे इन नपुंसकलिंग नामों को सुधार कर शिवकान्त, शिवेन्द्र, शिवेन्दु सदृश नाम रखे जा सकते हैं।

एक नाम और पढ़ने को मिला- सोहम्। यह शब्द सः+अहम् = सोऽहम् = सोहम् सन्धियुक्त शब्द है। इसका अर्थ है - वह मैं। सम्भवतः नामकरण करने वाले सज्जन ने इसके अर्थ पर विचार नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि वे दान्ती गुरूजी के उपदेश से प्रभावित होकर यह नाम रखा गया है। वरना इसमें कोई औचित्य नहीं।

8. गुरूओं द्वारा नामकरण- कई श्रद्धालु अपने गुरूओं से नाम पूछ लेते हैं। बस, जैसे उन्होंने बताया वैसा रख लिया। सोचने, समझने, विचारने का प्रश्न ही नहीं। एक सज्जन ने बेटी का नाम 'अनुराधा' रखा। मैंने कहा - "इससे और भी सुन्दर नाम हैं, उनमें रखे।" उत्तर मिला- " न, न! यह गुरूजी का दिया हुआ नाम है।" देखा आपने! यह भी अन्धविश्वास नहीं तो और क्या है?

9. नाम में वर्णों की संख्या - महर्षि दयानन्द ने " संस्कार विधि" में लिखा है कि पुत्र हो तो दो, चार, छः और पुत्री हो तो एक, तीन, पांच अक्षरों वाला नाम रखें। वैसे उन्होंने इसका कोई कारण या औचित्य नहीं बताया।

मेरे विचार से नाम की सार्थकता, मधुरता एवं सुबोधता की ओर ही अधिक ध्यान देना चाहिए। वर्णों के समाक्षर दो, चार, छः अथवा विषमाक्षर एक, तीन, पांच का वैज्ञानिक आधार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कपिल, कणाद, गौतम आदि महान् दर्शनिक ऋषियों के तीन अक्षिरों वाले विषमाक्षर नाम थे तथा सीता, गार्गी, कुन्ती, लोपामुद्रा, मदालसा, मेघा, श्रुतिकीर्ति आदि प्रसिद्ध विदुषियां समाक्षर नामों वाली हो चुकी हैं। इन पर सम या विषमाक्षर का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अतः नामों की सुन्दरता, सुस्पष्टता, सार्थकता आदि पर ही अधिक ध्यान देना चाहिए, न कि वर्णों की संख्या पर। क्योंकि यह नियम उतना व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता।

जहां तक पुरूष, स्त्री के भेद होने का प्रश्न है, सो नामों के लिंग से ही स्पष्ट हो जायगा। जैसे विजय पुलिंग और विजया स्त्रीलिंग अथवा विजय कुमार और विजय कुमारी में भी लिंगभेद स्पष्ट है।

फिर भी इस सम्बन्ध में मेरा कोई दुराग्रह नहीं है। यदि कोई सज्जन तर्क के लिए ही तर्क करना चाहें तो अलग बात है। केवल पाण्डित्य-प्रदर्शन में कोई औचित्य नहीं। व्यावहारिकता एवं यथार्थता के समीप होना ही श्रेयस्कर है। इतनी सूक्ष्मता के साथ तो आर्यों में भी नामकरण नहीं किया जा रहा। तमाम आर्यों के नामों में वही दोष विद्यमान हैं, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। बड़े-बड़े व्याख्याता, उपदेशक और विद्वान् भी इन दोषों से नहीं बच सके हैं। फिर वर्णों की संख्या अथवा स्वर, व्यञ्जनों में से निर्धारित/चयनित अक्षरों पर क्यों अवलम्बित रहा जाय?

thearyasamaj.org

युवा चरित्र निर्माण एवं आर्य वीर दल प्रशिक्षण शिविर सोल्लास सम्पन्न

वैदिक धर्म की रक्षा में अहर्निश सेवारत गुरूकुल आश्रम आमसेना के प्रांगण में 7 अक्टूबर 2014 को विजयादशमी के अवसर पर युवा चरित्र निर्माण एवं आर्य वीर दल प्रशिक्षण शिविर सोल्लास सम्पन्न हुआ।

इस शिविर का शुभारम्भ 2 अक्टूबर को नुआपड़ा जिले के यशस्वी विधायक श्री बसंत भाई पण्डा के करकमलों से ओ३म ध्वजोत्तोलन द्वारा हुआ। इस शिविर में छत्तीसगढ़, ओड़िसा से 200 आर्यवीरों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। शिविर में उन्हें आत्मरक्षा के उपायों के साथ-साथ चरित्र निर्माण का भी प्रशिक्षण दिया। शिविर का प्रशिक्षण सार्वदेशिक आर्यवीर दल के प्रचार मंत्री श्री चन्द्रदेव जी तथा आचार्य मुकेश जी ने दिया।

इस शिविर में अनेक आर्यवीरों ने यज्ञोपवीत ग्रहण कर शराब, मांस, नशा सेवन से दूर होकर आजीवन देश, धर्म की रक्षा करने का संकल्प लिया।

शिविर में गुरूकूल आश्रम आमसेना के आचार्य स्वामी व्रतानन्द जी सरस्वती, उपाचार्य डॉ. कुज्जदेव जी मनीषी, वा. विशिकेशन जी शास्त्री, आचार्य रणजीत जी 'विवित्सु', आ. मनुदेव वाग्मी तथा विश्वामित्र जी ' मुमुक्षु' का भी विशेष सहयोग रहा। शिविर के आयोजन की सारी व्यवस्था गुरूकुल की ओर से की गयी।

समापन समारोह 7 अक्टूबर को गुरूकुल आश्रम आमसेना के संस्थापक एवं संचालक स्वामी धर्मानन्द जी की अध्यक्षता में हुआ। इस अवसर पर श्री शरच्चन्द्र जी शरत् (उपजिलापाल, नुआपड़ा), श्री राजूभाई धोलकिया (पूर्व विधायक, नुआपड़ा), सीआरपीएफ कमाण्डर श्री प्रधान जी, श्री सुरेश अग्रवाल जी, डॉ. केवलचन्द्र जी साहू आदि अनेक आर्यसज्जनों उपस्थिति थें।

कार्यक्रम का संचालन डॉ. कुज्जदेव जी मनीषी तथा आनन्द कुमार जी शास्त्री ने किया। पुरस्कार वितरण उपरान्त मध्यान्ह 2 बजे शान्तिपाठ पूर्वक यह कार्यक्रम हर्षोल्लास पूर्वक सम्पन्न हुआ।

वैदिक धर्म की जय
महर्षि दयानन्द सरस्वती की जय

thearyasamaj.org

उनके पिता श्री नानकचंद जी का बनारस से बरेली में स्थानांतरण हो गया। बरेली में वह सिटी कोतवाल बनकर आये। उन दिनों महर्षि दयानंद का पदार्पण बरेली में हुआ, वहाँ स्वामी दयानंद के व्याख्यानों में प्रबंध करने के लिए नानकचंद जी को नियुक्त किया गया। नानकचंद जी महर्षि के भाषणों से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने सोचा कि अपने नास्तिक तथा शराबी पुत्र को स्वामी जी के सत्संग में लाना चाहिए। नहीं चाहते हुए भी दूसरे दिन पिता की आज्ञा का पालन कर उजड़े मन से मुंशीराम पिता जी के साथ बेगम-बाग की कोठी में जहाँ महर्षि का व्याख्यान हो रहा था, पहुँचे। महर्षि के पहले ही दर्शन और उपदेश का जो प्रभाव मुंशीराम जी पर पड़ा वह उनके ही शब्दों में सुनिए- "उस समय उस भव्य और दिव्य मूर्ति को देखकर कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई किंतु जब पादरी स्कॉट साहब और दो-तीन यूरोपियनों को अत्यंत श्रद्धा से बैठे देखा तो मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गई। अभी दस मिनट ही उपदेश सुना था कि मन में विचार आया कि यह बड़ा विचित्र साधु है केवल संस्कृत का विद्वान है, पर ऐसी युक्ति-युक्त बातें कहता है कि विद्वान भी दंग रह जाये। महर्षि के उपदेशों के बाद मैंने अपने जीवन में इस किस्म के उपदेश किसी से नहीं सुने। नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आनंद में निमग्न कर देना ऋषि आत्मा का ही काम था।"

एक दिन उन्होंने ऋषि के समक्ष अपनी शंकायें रखी। ऋषि ने उनका उचित समाधान किया फिर क्या था मुंशीराम निःसंकोच होकर अपनी शंकायें उनके सामने रखते और महर्षि दयानंद उनका समाधान कर देते। एक दिन मुंशीराम ने ईश्वर के अस्तित्व पर बड़े तीखे आक्षेप किये। स्वामी जी ने बड़े प्रेम से उत्तर दिये। पाँच मिनट के प्रश्नोत्तर से मुंशीराम की तर्कबुद्धि मौन हो गई। वे बोले "महाराज तर्क से आपने मुझे चुप तो करा दिया लेकिन अभी भी विश्वास नहीं होता कि ईश्वर की कोई सत्ता है।" ऋषिवर पहले हँसे फिर गंभीर स्वर में कहा, "देखों, तुमने प्रश्न किये मैंने उत्तर दिये, यह तर्क की बात थी। मैंने कब प्रतिज्ञा की थी कि में तुम्हारा ईश्वर पर विश्वास करा दूँगा?" मुंशीराम लिखते हैं, "उस समय ऋषि ने उपनिषद् का यह वाक्य बोला, "पानेकैष वृणुने नेन लक्ष्य," जब ईश्वर की कृपा होगी तो यह परम विश्वास भी हो जायेगा। तभी तुम्हारे हृदय के संशय दूर होंगे। बस इन शब्दों ने मुंशीराम पर जादू का असर किया। वहाँ पर 10 दिनों तक महर्षि का प्रवचन हुआ था और मुंशीराम दस दिन तक लगातार उनका प्रवचन सुनने जाते रहे। यही वह घटना थी जिसने उस नास्तिक और दुर्व्यसनी युवक मुंशीराम के जीवन की कायापलट कर दी। दूसरे शब्दों में एक देवदूत बनकर आये जिन्होंने मुंशीराम के दूषित मानसपटल को झकझोर कर कल्याण मार्ग की ओर उन्मुख कर दिया।

2. सत्यार्थ प्रकाश- मुंशीराम जी को महान् बनाने में सत्यार्थ प्रकाश का भी बहुत योगदान था। स्वामी दयानन्द से प्रभावित होने के पश्चात् उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश को भी पढ़ना आरंभ कर दिया। पुनर्जन्म के सिद्धांत के विषय में उनके मन में बड़ी शंका थी पर सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने के पश्चात् उनकी सारी शंकाओं का सामाधान हो गया। वह जो कुछ सत्यार्थ प्रकाश में पढते थे, उन पर आचरण करते थे। उन्होंने पढा कि

thearyasamaj.org

प्रेषक :
सभा-मंत्री
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला
पटना-८०० ००४

सेवा में,
श्री/मैसर्स..............................
मो०..............................
पो०..............................
जिला..............................
(प्रेषिती के न मिलने पर यह अंक प्रेषक को ही लौटा दें।)

मुद्रित सामग्री

50 वर्ष के बाद वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए अतः उन्होंने अपना घर छोड़कर गुरूकुल में रहना प्रारंभ कर दिया और फिर संन्यासाश्रम में भी प्रवेश किया- यह सब सत्यार्थ प्रकाश जैसे अमर ग्रंथ का ही प्रभाव था। वह इस ग्रंथ का नियमपूर्वक स्वाध्याय करते थे। जब मुंशीराम ने सत्यार्थ प्रकाश के दसवें समुल्लास का भक्ष्याक्ष्य प्रकरण पढ़ा तो उन्हें माँस खाने से घृणा हो गई और उन्होंने उस दिन से माँस छोड़ दिया। अब तो उन्होंने यह कहना आरंभ कर दिया ''एक आर्य के मत में माँस-भक्षण भी महापापों में से एक है। इस प्रकार सत्यार्थ प्रकाश को पढ़कर उन्होंने अपने जीवन को महान बनाया था। उनके चरित्र की एक महान विशेषता यही थी कि वह जो अच्छी बात पढ़ते थे उसे अपने आचरण में अवश्य लाते थे। उनका यही गुण उन्हें मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानंद बना सका था।

3. धर्मपत्नी शिवदेवी- उनको महान बनाने में उनकी धर्मपरायण और पतिव्रता पत्नी शिवदेवी की थी बहुत बड़ी प्रेरणा थी। कहते हैं कि किसी भी मनुष्य को महान बनाने में उसकी पत्नी का बहुत बड़ा योगदान होता है- मुन्शीराम जी के विषय में भी यह कथन सत्य है। यद्यपि शिवदेवी शिक्षित नहीं थी परन्तु वह भारतीय संस्कृति के उदात्त गुणों से ओतप्रोत माता-पिता कि पुत्री थी। अतः एक आदर्श भारतीय नारी के सभी गुण उनमें थे। अपने सुख का त्याग कर पति की सुख-सुविधा का, उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखना, उनका कर्त्तव्य था। पाश्चात्य सभ्यता में रंगे हुए और सभी प्रकार के दुर्व्यसनों में फंसे हुए अपने पति को सन्मार्ग पर लाने में उन्होंने विशेष भूमिका निभाई। उन्हें पग-पग पर गिरने से बचाया। उनके जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिसे उन्होंने अपनी पति निष्ठा की भावनाओं से अभिभूत होकर शराब पीना छोड़ दिया। इस प्रकाश इन तीन गुरूओं ने मुंशीराम का जीवन बदल कर कल्याण मार्ग का पथिक बना दिया। इन तीनों के अमृत संरक्षण में राष्ट्र के महान बलिदानियों की श्रृंखला में सबसे अग्रिम पंक्ति में खड़े दिखाई देने वाले संत स्वामी श्रद्धानन्द को शत-शत नमन।

- पं० संजय सत्यार्थी

स्वत्वाधिकारी, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा,, श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 के लिए श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता (मंत्री) द्वारा जय उमा प्रिन्टर्स, पटना द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।